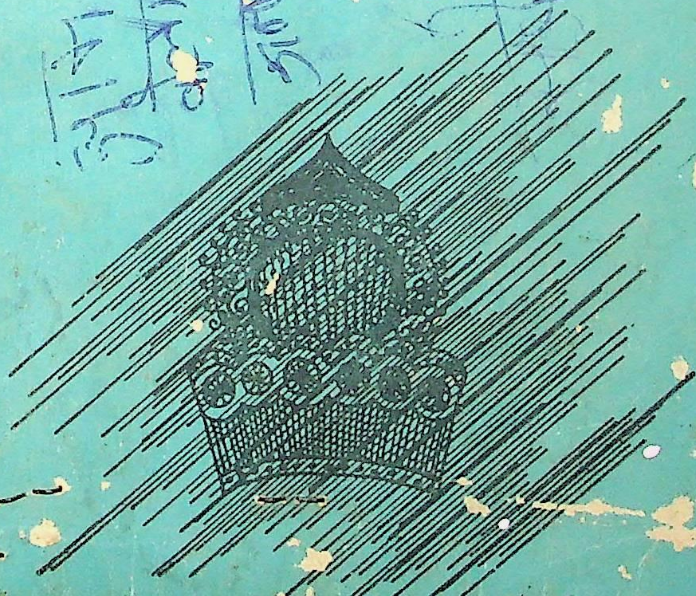
मेरे राम का मुकुट भीग रहा है

एक विवेचन

डॉ॰ कृष्णदेव शर्मा



विषय-सूची



विषय	पृष्ठ सं०
विभिन्न निबन्धों का सारांश, तात्त्विक विवेचन एवं व्याख्या	
मुकुट, मेखला एवं नूपुर	२८
अमरकन्टक की सालती स्मृति	४४
मेघदूत का संदेश	६४
अयोध्या उदास लगती है	८७
मेरे राम का मुकुट भीग रहा है	१०६

(Dr Maya Bala Bhagat)

मेरे राम का मुकुट भीग रहा है

विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों में व्यक्तित्व की छाप

निबन्ध हिन्दी साहित्य की एक अपेक्षतया आधुनिक विधा है। यही नहीं, निबन्धों को गद्य का शृंगार तक कहा जाता है और इसका कारण यह है कि इसमें निबन्धकार का व्यक्तित्व, उसकी भाषा, उसकी प्रतिभा का सर्वाधिक विकास परिलक्षित होता है। हिन्दी के आलोचकप्रवर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।" साहित्य की अन्य विधाओं और निबन्धों के बीच एक मुख्य अन्तर व्यक्तित्व की छाप होती है। सच पूछा जाए तो निबन्ध अपने लेखक का सच्चा साहित्यिक प्रतिनिधि होता है। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में, "निबन्ध से तात्पर्य सच्चे साहित्यिक निबन्धों से है, जिनमें लेखक अपने-आपको प्रकट करता है, विषय तो केवल बहाना मात्र होता है।"

इस प्रकार निबन्ध की एक अन्यतम विशेषता निबन्धकार के व्यक्तित्व की छाप होती है और यह छाप निबन्ध की अन्तर्वस्तु पर ही नहीं, उसकी अभिव्यक्ति पर भी होती है। दो शब्दों में कहा जाए तो निबन्ध में निबन्धकार का समूचा ज्ञान, विचार, आस्थाएं, विश्वास और आदर्शों की सजीव अभिव्यक्ति होती है। इस दृष्टि से श्री विद्यानिवास मिश्रजी के निबन्धों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि उनके प्रत्येक निबन्ध पर उनके व्यक्तित्व की महत्ता बराबर छाई रहती है। मिश्रजी आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक समर्थ और सशक्त निबन्धकार के रूप में दीखते हैं। संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होने के कारण उनके निबन्धों में एक विशिष्ट गरिमा के दर्शन भी होते हैं। इसके साथ ही मिश्र जी भारतीय लोकजीवन एवं लोकसंस्कृति के भी अध्येता रहे हैं। उन्होंने भारतीय जनजीवन को निकट से देखा

है अतः स्वभावतः उनके निबन्धों में "जहां एक ओर संस्कृत के शास्त्रीय वैभव का उज्ज्वल आलोक दिखाई देता है वहां दूसरी ओर लोकजीवन और लोकसंस्कृति की चांदनी भी छिटकती हुई दृष्टिगोचर होती है।"

श्री विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों में व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति मुख्यतः निम्न रूपों में मिलती है—

(क) आत्मप्रकान अर्थात् आत्मपरक अभिव्यक्तियां।

(ख) पाठकों के साथ सम्बन्ध स्थापन।

(ग) वैयक्तिक राग-विरागों की अभिव्यक्ति।

(घ) व्यक्तिगत आस्थाओं और आदर्शों की अभिव्यक्ति।

(ङ) भावुकता।

(च) चिन्तन की प्रमुखता।

(छ) विचारों की स्पष्टता एवं ईमानदार अभिव्यक्ति।

(ज) सहज सरलता और स्पष्टता : स्वच्छ प्रसन्नता।

श्री मिश्र के निबन्धों में उनके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति अनेक रूपों में हुई है। इन विभिन्न रूपों का संक्षिप्त विवेचन निम्नानुसार है—

(क) आत्मप्रकाशन अर्थात् आत्मपरक अभिव्यक्तियां—आत्मप्रकाशन अथवा आत्मपरक अभिव्यक्तियां मिश्रजी के निबन्धों की अन्यतम विशेषता है। कदाचित् इसी कारण उनके कई निबन्ध तो अत्यधिक आत्मपरक हो गए हैं। उनके निबन्धों में ऐसे अनेक स्थल देखने में आते हैं जहां मिश्रजी की आत्मपरक अभिव्यक्तियां बहुत कुछ आत्मविश्लेषणात्मक ढंग की बन पड़ी हैं। उदाहरण के लिए मिश्रजी के निबन्ध 'वसन्त आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' की निम्न पंक्तियां देखिए—'चैत की चांदनी में चुरने के लिए मन उन्मन नहीं होता। बस घरबार है और मैं हूं, वसन्त की बेचैनी बड़ी बचकानी लगती है। या मैं वसन्त से डर रहा हूं जैसे कोई अंधकार में श्मशान के पीपल की डाल से लटकी हुई किसी लाश से डरता हो। मैं डर रहा हूं क्योंकि वसन्त मेरे ढूह होने से प्रमाणित करने के लिए आ रहा है, मैं डर रहा हूं क्योंकि वसन्त मेरे ऊपर पागलपन में चढ़ी हुई खीरे की बेल सरीखी मेरी प्रतिमा को झकझोरकर विलग कर देगा, उसे ढूह और हरियाली की लिपटन बरदाश्त नहीं है। नहीं, मैं बूढ़ा नहीं हुआ। वसन्त ही बुढ़ा चला है। मैं आधुनिकता का प्रवाचक कभी बूढ़ा नहीं हो सकता, वसन्त की प्रक्रिया में ही कोई व्यतिक्रम

आ गया होगा। किसी दुष्यन्त ने अपनी विस्मृति की खीझ से यह डौडी पिटवा दी होगी कि इस वर्ष मदनोत्सव नहीं मनाया जाएगा।"

(ख) पाठकों के साथ सम्बन्ध स्थापन—मिश्रजी के निबन्धों में ऐसे अनेक स्थल आते हैं जहां लगता है कि निबन्धकार और उनके पाठकों के मध्य सहज तादात्म्य स्थापित हो गया है। निश्चय ही ऐसे स्थलों पर निबन्धकार पाठक के समक्ष बातचीत-सा करता दीखता है। ऐसे स्थलों पर वैचारिक बोझिलता नहीं रह पाती और पाठक निबन्धकार की बात को सहज ही आत्मसात् कर लेता है। उदाहरण के लिए मिश्रजी के एक निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए, "परम्परा शब्द धीरे-धीरे बुद्धिजीवी लोगों के बीच वर्जित होता जा रहा है। मैं समझता हूं, यह एक खतरनाक स्थिति है। परम्परा का खण्डन एक अलग बात है क्योंकि उस खण्डन से ही परम्परा का विकास होता है, परन्तु परम्परा को नकारना एक दूसरी ही स्थिति है जो चिन्तन और सर्जन में खोखलेपन और परायेपन को जन्म देती है। आधुनिक भारतीय बुद्धिजीवी या तो परम्परा से ग्रस्त है या भागने की कोशिश में परेशान। वह परम्परा को स्वीकार करने में हिचकता है, इसीलिए सही परम्परा और गलत परम्परा के विवेचन के पचड़े में भी नहीं पड़ना चाहता। वह परम्परा को चूंकि जानना भी नहीं चाहता इसलिए उसका जोरदार खण्डन भी नहीं कर पाता।"

(ग) वैयक्तिक राग-विरागों की अभिव्यक्ति—निबन्धों में निबन्धकार की वैयक्तिकता की प्रतिष्ठा तभी हो पाती है जबकि उसका निजत्व, उसके अपने राग-विरागों की भी अभिव्यक्ति हो सके। यद्यपि पाठक निबन्धों का अध्ययन अपनी ज्ञान-बुद्धि के लिए करता है फिर भी निबन्धकार के व्यक्तिगत राग-विरागों के माध्यम से वह अपने निबन्धकार के साथ एक गहरा तादात्म्य भी स्थापित कर लेता है। मिश्रजी के निबन्धों की एक अन्यतम विशेषता यह है कि उसमें किसी भी प्रकार की वैचारिक बोझिलता नहीं खलती, आरम्भ से अन्त तक पाठक को एक विचित्र प्रकार का अपनापन-सा अनुभव होता रहता है, उसे ऐसा बराबर अनुभव होता रहता है कि वह किसी महान पंडित के विचारप्रधान निबन्धों की भूलभुलैया में नहीं खोया है अपितु अपने एक गहरे दोस्त की रुचिपूर्ण बातें सुन और पढ़ रहा है। इस दृष्टि से मिश्रजी के एक निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—

"मैं इसीलिए इस पर बल देता हूं कि हमारे देश में जो कृत्रिम प्रकाश में हर

चीज विलग दिखती है, आकाश सत्ताईस नक्षत्रों में विभक्त दीखता है, अपने कमरे का कोना भी अलग कमरा प्रतीत होता है, एक छोटी-सी कुर्सी की आड़ में पड़कर। इसका कारण है बुद्धिजीवी वर्ग के मूल्य-बोध पर पर्दा पड़ गया है, इसका कारण है हममें से जो सुसंस्कृत होने का दावा करते हैं, वे भूल गए हैं कि भाषा का संस्कार भाषा के साथ जीने से आता है, भाषा के साथ खिलवाड़ करने से नहीं आता। इसका कारण है हम भावनात्मक एकता की बात करते हैं, पर स्वयं भावना से अछूते हैं। देश को एक अविभाज्य और समग्र देखने वाली आंख तो थी हिन्दी, उसी में उंगली घुसेड़कर देश की एकता की रक्षा की बात की जा रही है।"

(घ) **वैयक्तिक आस्थाओं और आदर्शों की अभिव्यक्ति**—निबन्धकार की निजता के साथ उसकी आस्थाएं और आदर्श सहज ही जुड़े रहते हैं। अतः जब हम निबन्धों में निबन्धकार के निजत्व की अभिव्यक्ति की बात करते हैं, तो हमारा आशय उसके व्यक्तिगत राग-विरागों, अभिरुचियों आदि के साथ-साथ उसके आदर्श और आस्थाओं की अभिव्यक्ति से भी होता है। मिश्रजी के निबन्धों में भी उनके आदर्शों और आस्थाओं की सजीव अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरण के लिए उनके निबन्धों के कतिपय प्रसंग देखिए—

(१) **सत्य के प्रति आस्था**—"मैं भी मसाल लेकर सारे जंगल को एक साथ रोशन कर देता। कितना भी अपरूप क्यों न हो, सत्य तो उद्घाटित हो जाता। अभी तो कसमसाकर रह जाता हूं, इन टूटे हुए दियों से काम चलाओ और रह-रहकर आभास होता है कि यह अकेले जागने का कैसा दुरन्त अभिशाप है, जिस जागने का कोई अभिमान नहीं होता, केवल व्यर्थता की प्रतीति-भर होती है क्योंकि इस जागरण में कोई मंत्र भी नहीं सधता, केवल अस्तित्व तिल-तिलकर गिरता जाता है।"

(२) **परम्परा के प्रति आस्था**—"आधुनिक बुद्धिजीवी की विडम्बना यह है कि वह या तो परम्परा से भयभीत है और सत्यनारायण-कथा की मनौती मानकर उसके दायित्व से मुक्त होने की बात सोचता है या वह परम्परण को इतना हेय समझता है कि बार-बार घर से रद्दी के रूप में उसे निकालकर ही स्वास्ति की सांस लेता है या यदि वह कुछ अभिजात, अप्रतिबद्ध और अन्तर्राष्ट्रीय हुआ तो परम्परा को सजावट की चीज समझता है। वह यह मानने को तैयार नहीं है कि करोड़ों लोगों के साझे के अनुभव के स्पन्दन में एक छन्द होता है और वही परंपरा

है। परम्परा कोई सिद्धवस्तु नहीं है, वह प्रक्रिया है, जो कुछ मिट रही है और जो कुछ बन रही है।"

(ग) राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति आस्था—"हिन्दी राष्ट्रभाषा किसी कानून से, किसी बहुमत से या किसी अनुचित दबाव से नहीं, स्वाधीनता के यज्ञ में आहुति देने वाली प्रत्येक यजमान की श्रद्धा से, उसके ऋत्विजों की श्रद्धा से और स्वाधीनता की आवश्यकता से बनी। हिन्दी को राष्ट्रभाषा भूगोल ने नहीं, इतिहास ने बनाया। वह इतिहास हमसे काट दिया जाए तो हिन्दुस्तान नहीं रहेगा। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा नेताओं ने नहीं, नेताओं के नेता बनाने वाली उस भारतीय जनता ने बनाया जो सन्तों के सत्य की भांति दूब बनकर बिधी रही, जिसे कुचलकर भी कुचला नहीं जा सका, जिसे कोई भी आततायी उन्मीलित नहीं कर सका। उस खेतिहार जनता ने, अपढ़ पर भीतर से संस्कृत जनता ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाया, उस जनता की आकांक्षा को व्यक्त करने के लिए, उसकी प्रतिष्ठा को सबसे बड़ी प्रतिष्ठा देने के लिए अहिन्दी भाषी दूरदर्शी जननायकों ने हिन्दी के आन्दोलन को राष्ट्रीय आन्दोलन का अंग बनाया।"

(ङ) भावुकता—मिश्रजी के निबन्धों की एक अन्यतम विशेषता यह है कि उनके विचारप्रधान निबन्धों में भी भावुकता का निर्वाह बराबर मिलता है। यही भावुकता उनके निबन्धों में एक विचित्र प्रकार का लालित्य, माधुर्य और सौकुमार्य भर देती है। कठिन-से-कठिन विषय का विवेचन भी वे ऐसी कुशलता के साथ करते हैं कि दुरूह विषय भी भावात्मकता का संस्पर्श पाकर सहज ही बोधगम्य बन जाते हैं। इस प्रयोजन के लिए मिश्रजी ने कहीं-कहीं कविता का प्रयोग भी किया है। उदाहरण के लिए उनके निबन्ध 'परम्परा : आधुनिक भारतीय संदर्भ' के प्रसंग में महाभारत की पंक्तियां देखिए—

जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते।
संकरात् सर्ववर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः।
सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः।
वाङ्मैथुनमथो जन्म मरणञ्च समं नृणाम्।
इदमार्षं प्रमाणं च ये यजामह इत्यपि।
तस्माच्छीलं प्रधानेष्टं विदुर्ये तत्त्वदर्शिनः।

अर्थात् "मेरा यह निश्चित मत है कि मनुष्य की नस्ल की परीक्षा नहीं हो सकती क्योंकि सारे वर्णों की मिलावट हो चुकी है। बहुत पहले से सारे मनुष्य सभी जातियों की स्त्रियों में सन्तान उत्पन्न करत चले आये हैं। भाषा, मैथुन, जन्म और मृत्यु ये सभी मनुष्यों में समान रूप से बंटी हुई हैं। पूर्वकाल में ऋषियों ने भी इसीलिए इस पर बल दिया है कि जो अपनी आहुति देते हैं, वे ही श्रेष्ठ हैं और शील ही सबसे बड़ा मूल्य है।"

(च) **चिन्तन की प्रमुखता**—निबन्ध अनिवार्यत: चिन्तन को उद्बुद्ध करने के लिए होते हैं। मिश्रजी के निबन्धों में उनका विचारक का रूप अनेक स्थलों पर उभरकर आता है। चिन्तन के साथ गम्भीरता सहज ही जुड़ी रहती है। स्वभावत: मिश्रजी के निबन्धों में अनेक स्थलों पर चिन्तन की प्रधानता के दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए उनके एक निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"पश्चिम में सौन्दर्य-दृष्टि का केन्द्र ही स्थान-च्युत हो गया है क्योंकि कला जीवन के समग्र भार को वहन करने में असमर्थ हो गई है, कला की परिधि रूप जीवन-प्रक्रिया की जटिलता ही अधिक गंभीर प्रतीत होने लगी है। आज से पूर्व के संक्रमण युगों में कला के माध्यम में परिवर्तन हुआ, पर कला के प्रति दृष्टि में परिवर्तन नहीं हुआ था। आज दृष्टि ही बदल गई है, कला तृप्ति के लिए नहीं रहीं, अतर्पणीय जिजीविषा की तृषा और बढ़ाने के लिए नमकीन घोल का काम कर रही है।"

(छ) **विचारों की स्पष्टता एवं ईमानदार अभिव्यक्ति**—मिश्रजी के निबन्धों की एक अन्यतम विशेषता यह है कि उनके विचारों की अभिव्यक्ति में स्पष्टता बराबर बनी रहती है। उन्हें जो कुछ भी कहना है अथवा जो भी मत व्यक्त करना है, उसमें वे एक अद्‌भुत निष्ठा और स्पष्टता का परिचय देते हैं। उनके चिन्तन में जो स्पष्टता है, उनकी अभिव्यक्ति में भी उसी स्पष्टता के दर्शन होते हैं। लाग-लपेट अथवा घुमा-फिराकर बात कहना मिश्रजी के स्वभाव के प्रतिकूल है। उन्हें जो कुछ कहना है, उसे वे बिना किसी संकोच अथवा रोक-टोक के कह देते हैं। उदाहरण के लिए उनके एक निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"आज समूचे विश्व में पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के बीच इतनी चौड़ी खाई उत्पन्न हो गई दीखती है कि जितनी कभी पहले इतिहास में नहीं दिखी। यों तो हर पीढ़ी अपनी पिछली पीढ़ी से भिन्न होती है और प्रत्येक संक्रमण-युग की पीढ़ी विशेष रूप से, पर आज तो अन्तर है, वह चौड़ा होने के साथ-साथ बहुत गहरा भी है।

इसीलिए पुरानी और नयी, दोनों पीढ़ियों को, यह अन्तर असमाधेय समस्या के रूप में भयावह व दुरन्त प्रतीत होता है। कला और साहित्य में इस प्रतीति का तीखापन सबसे पहले प्रकट हुआ है असली और नकली दोनों रूपों में। इस मानसिक दूरी ने एक अजीब तनाव और आशंका की सृष्टि की है।"

(ज) **सहज सरलता और स्पष्टता : स्वच्छ प्रसन्नता**—मिश्र जी के निबन्धों में जहां चिन्तन की गम्भीरता और पांडित्य का परिचय मिलता है वहां सर्वत्र एक अद्भुत सहजता, सरलता और स्पष्टता के भी दर्शन होते हैं। इस प्रकार उनके निबन्धों में आद्योपान्त एक प्रकार की स्वच्छ प्रसन्नता बराबर दीखती है। छोटे-छोटे और सरल-से दीखने वाले वाक्यों में मिश्र जी ने विचारों का अक्षय भण्डार भर दिया है। उदाहरण के लिए मिश्रजी के निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"विश्वविद्यालयों का कितना धन-जन मुकदमेबाजी में पिछले दशक में लग रहा है, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि प्रायः प्रत्येक विश्वविद्यालय में अब लगभग एक पूर्णकालिक परोपकार है, यद्यपि वह नियुक्ति किसी दूसरे पद पर है और वकील की फीस, भत्ते तथा अन्य मदों को लेकर बजट में स्वीकृत धनराशि से कई गुना खर्च प्रतिवर्ष हो रहा है।"

विद्यानिवास मिश्र की निबन्ध-शैली की विशेषताएं

मिश्र जी की गणना हिन्दी के श्रेष्ठतम आधुनिक निबन्धकारों में की जाती है। मिश्रजी की समूची साहित्यिक प्रतिभा केवल उनके ललित-निबन्धों में ही व्यक्त हो सकी है। उनके निबन्धों के विषय लोक-जीवन और ग्रामीण समाज से लेकर राष्ट्र-भाषा हिन्दी के ज्वलन्त प्रश्न तक फैले हुए हैं। उनके निबन्धों में लोकजीवन और लोकसंस्कृति की चांदनी सर्वत्र बिखरी दीखती है। कदाचित् इसी कारण एक विद्वान् आलोचक ने उनके ललित-निबन्धों की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहा है कि "आपने साधारण-से-साधारण विषयों को लेकर उन्हें पौराणिक, ऐतिहासिक एवं साहित्यिक संदर्भों से ऐसा सुज्जित किया है कि पढ़ते ही हृदय आनन्द-विभोर हो उठता है और पाठक उनके वैयक्तिक निबन्धों की ललित-कला में ऐसा डूब जाता है कि उसे कुछ क्षणों के लिए अपनी सुधबुध नहीं रहती तथा निबन्धों की भूल-भुलैया में विचरण करता रहता है।"

जहां तक मिश्रजी की निबन्ध-शैली का प्रश्न है, उसकी अपनी विशेषताएं हैं। मिश्रजी ने अपने निबन्धों के लिए विषय और प्रसंगानुसार बहुविध शैलियों

का प्रयोग किया है। जहां उनके विचार-प्रधान निबन्धों में गूढ़-गुम्फित शैली का प्रयोग मिलता है वहां अवसर की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उन्होंने कहीं-कहीं व्यंग्य-विनोदपूर्ण सरस एवं कटाक्षों से युक्त शैली का भी प्रयोग किया है। अनेक स्थलों पर अपने हृदय के भीतर सिमटे हुए भाव-सौन्दर्य को बिखेरने के लिए उन्होंने कवित्वमयी शैली का प्रयोग किया है। कहने का भाव यह है कि मिश्रजी का मूल उद्देश्य अपनी अभिव्यक्ति को अधिकाधिक मार्मिक, सजीव और प्रभावोत्पादक बनाने का रहा है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से मिश्रजी के निबन्ध में प्रयुक्त शैलियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

(क) विषयों की विविधता।
(ख) भारतीय संस्कृति के प्रति असीम निष्ठा।
(ग) व्यक्तित्व की छाप।
(घ) विचारतत्त्व : विचारात्मकता और गम्भीरता।
(ङ) विश्लेषणात्मकता।
(च) शैली वैविध्य, अभिव्यक्ति सम्बन्धी विविधता।
(छ) हास्य-व्यंग्यपूर्ण सरस कटाक्षपूर्ण शैली का प्रयोग।

मिश्रजी की निबन्ध-शैली की उपर्युक्त विशेषताओं का विवेचन निम्नानुसार किया जा सकता है—

(क) विषयों की विविधता—मिश्रजी के निबन्धों में अधिकांशतः ललित निबन्ध ही हैं। इन ललित-निबन्धों में मिश्रजी ने अनेकानेक विषयों पर गम्भीर और मौलिक निबन्धों की रचना की है। भावात्मक-निबन्धों में व्यक्ति-प्रधान निबन्ध भी आ जाते हैं जिनमें निबन्धकार ने आत्मप्रकाशन भी किया है। इस प्रकार के निबन्धों के कतिपय विषय हैं—आंगन का पंछी, नया दौर, बनजारा मन, अन्धी जनता और लंगड़ा जनतंत्र, कमल भक्षकों के देश में, प्रभुत्व ज्वर अस्पताल, नर-नारायण, डेरी बनाम खेती आदि। इन भावात्मक निबन्धों में मिश्रजी ने अवसरानुकूल तीखे व्यंग्य, मधुर-विरोध और सजीव आक्रोशपूर्ण शब्दावली का प्रयोग किया है।

मिश्रजी के निबन्धों की दूसरी श्रेणी में विचारात्मक निबन्ध आते हैं जिनमें चिन्तन-मनन के साथ-साथ बौद्धिकता की प्रधानता सर्वत्र दीखती है। इस प्रकार के विचारात्मक निबन्धों में मिश्रजी का गम्भीर और मौलिक चिन्तन मुखर हो

उठा है। इस श्रेणी के कुछ निबन्धों के विषय इस प्रकार हैं—नयी पीढ़ी की बेचैनी: भारतीय सन्दर्भ, युद्ध और व्यक्तित्व, आदर्शों का द्वन्द्व, विवाह-धूम, हिन्दी बनाम राजनीति, हिन्दी का विभाजन, राष्ट्रभाषा की समस्या, परम्परा: आधुनिक भारतीय सन्दर्भ, आम्रमंजरी, निबन्धकार द्विवेदी जी आदि-आदि।

मिश्रजी के निबन्धों की तीसरी श्रेणी को समीक्षात्मक निबन्धों की संज्ञा दी जा सकती है जिनमें मिश्रजी का समीक्षक-रूप उभरकर आया है। इस श्रेणी के निबन्धों के कुछ शीर्षक इस प्रकार हैं—रीति विज्ञान : परिधि और प्रयोजन, काव्य भाषा और काव्येतर भाषा, सादृश्य विधान, काव्य भाषा का गठन और साभिप्राय विचलन। इसी श्रेणी के निबन्धों में मिश्रजी ने कतिपय निबन्ध विशिष्ट काव्य-व्याख्याओं के रूप में भी लिखे हैं जैसे कि प्रलय की छाया, राम की शक्ति-पूजा और असाध्य वीणा।

मिश्रजी के निबन्धों की चौथी श्रेणी वर्णनात्मक निबन्धों की है जिसमें निबन्धकार की कल्पना ही प्रमुख बन पड़ी है। इस प्रकार के निबन्धों में मिश्रजी ने दर्शनीय स्थलों, तीर्थ-स्थानों, मेले और तमाशों पर वर्णनात्मक-निबन्धों की रचना की है। इस श्रेणी के निबन्धों के कुछ विषय इस प्रकार हैं—संस्कृति की पाषाणी, मलय के अंचल में।

इस सबके अतिरिक्त मिश्रजी ने कुछ संस्मरणात्मक निबन्धों की रचना भी की है। जिसमें उन्होंने अपने कतिपय निकट साहित्यिक मित्रों के जीवन के रोचक और अछूते प्रसंगों का सजीव वर्णन किया है। इस श्रेणी के कतिपय निबन्धों के विषय इस प्रकार हैं—हिन्दी के अपराजेय योद्धा—भैया साहब, हिमालय ने उन्हें बुला लिया, भाई श्रीवर आदि। उन्होंने इस प्रकार के ललित-निबन्धों का प्रणयन किया है, जिनमें से कुछ राजनीतिक गतिविधियों पर व्यंग्यों की बौछार करते हैं, कुछ सामाजिक विघटनों पर कटाक्षपात करके हैं। कुछ दैनिक जीवन की विषमताओं का पर्दाफाश करते हैं और कुछ हमारी परम्परागत मान्यताओं एवं धारणाओं पर व्यंग्य-बाणों की वर्षा करते हैं।"

(ख) भारतीय संस्कृति के प्रति असीम निष्ठा—मिश्रजी के निबन्धों में सर्वत्र भारतीय संस्कृति के प्रति असीम निष्ठा के दर्शन होते हैं। निबन्धकार ने पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के खोखलेपन को बहुत अच्छी तरह समझा और व्यक्त किया है। अपने एक निबन्ध में मिश्रजी लिखते हैं कि "हमारे देश के तरुण

पश्चिम की ओर मुंह बाये खड़े हैं, कब शहद टपके, पश्चिमी बयार कब उनके लिए नरगिस (आत्मरति की अधिदेवता) का पराग लाये, पश्चिम का बादल कब उनके लिए मृत्यु-पीड़ा के देशों के रंगीन चित्र लाये। वे जीवन से ऊबे हैं, अपने आसपास से ऊबे हुए हैं, अपने अतीत से ऊबे हुए हैं। धुर पश्चिमी (क्योंकि पश्चिम भी एक नहीं, अनेक हैं) का तरुण मृत्यु के त्रास से आक्रान्त है, वर्तमान की समृद्धि से आकुल है, अपने भीतर की कुंठाओं से ग्रस्त है, वह महेशयोगी के कीर्तन की धुन के पीछे बावला है; रविशंकर के सितार और हिन्दुस्तान की विज्ञापित रंगीनियों के लिए अपने को न्यौछावर करना चाहता है। पर वह रामधुन, गीता-पाठ, फूल पंथ (हिप्पी सम्प्रदाय हर राही को गुलदस्ते भेंट करना अपना धार्मिक अनुष्ठान मानता है) और सितार ये सब कुछ उसको नशा देते हैं और नशा उतरते ही उदासी गहरे नशे का तकाजा करती है, चिलम चढ़ती है, चिलम की सवारी पर नए अनुभव-लोकों की सवारी होती है।

(ग) **व्यक्तित्व की छाप**—मिश्रजी के निबन्धों की एक अन्यतम विशेषता यह है, कि उनका प्रत्येक निबन्ध उनके निजी व्यक्तित्व की सुस्पष्ट छाप लिये होता है। उनके प्रत्येक निबन्ध में उनके व्यक्तित्व की कस्तूरीगंध व्याप्त रहती है। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में "उनके सभी निबन्धों पर उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप है, उन्होंने प्रायः अपने व्यक्तित्व को ही आधार बनाकर सभी निबन्धों का प्रणयन किया है और उनकी समूची विचार-शृंखला व्यक्तिनिष्ठ विश्वास और निष्ठा के आलोक से उद्भासित होकर उनके दुर्निवार व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि पर स्थित है।" उदाहरण के लिए उनके एक निबन्ध 'मेरी रूमाल खो गई' की निम्न पंक्तियां देखिए—"तुम्हारी नजर में वह रूमाल छोटी चीज, मात्र परिमार्जन करने वाली रूमाल थी या वक्ता की एक विशेष अदा बनने के लिए बार-बार मुंह की शोभा बढ़ाने वाली रूमाल थी, या हाथ से खड़िया या चूरा झाड़ने वाली रूमाल थी। मैं तुम्हें कैसे समझाऊं कि वह रूमाल मलयज से सुवासित थी, जन्म-जन्मान्तर की सहेली ने बड़े जतन से उसे सुवासित किया था, केवल मलयज से ही नहीं, बल्कि मलयज से भी अधिक शीतल और अधिक सुरभि वाले अपने वदनोच्छ्वास से और फिर उसमें बहुत मीठे उलाहने के साथ अत्यन्त कलापूर्ण ढंग से दिखा-दिखाकर एक गांठ दी थी—विस्मरणीयशील, यह गांठ दे रही हूं, याद रखना। पर मैं हूं कि रूमाल ही गंवा बैठा हूं, बस इतना ही याद है कि वह रूमाल आदिशक्ति की सौंपी हुई थाती थी। वह रूमाल अटकी हुई रूमाल

नहीं थी, उधार ली हुई भी नहीं थी, यहां तक कि पैसों से खरीदी हुई भी नहीं थी, इस रूमाल की बक़त तुम्हारे जैसे लोग क्या करेंगे ? तुम्हारी मस्ती की परिभाषा है आत्मसन्तुष्टि, तुम्हारी रूमाल की व्याख्या है उपयोग। तुम क्या जानोगे कि मस्ती जेब में रखने की चीज नहीं, हाथ में लेकर मुक्त पवन में लहराने की चीज है, यह तुम्हारे कलुष को पोंछने के लिए नहीं, तुम्हारे पुण्य के आमोद को परिपूरित करने के लिए है। तुम्हारे लेखे एक रूमाल गई, बीसियों मिल जाएंगी— पर यहां रूमाल के साथ चित्त की उज्ज्वलता की सारी संचित पूंजी चली गई है।"

(घ) विचार तत्व : विचारात्मकता और गम्भीरता—मिश्रजी के निबन्धों में सर्वाधिक संख्या भावात्मक निबन्धों की है किन्तु इनके भावात्मक निबन्धों में केवल भावुकता अथवा कल्पना की उड़ानें ही नहीं हैं, उनमें निबन्धकार की बौद्धिकता और गम्भीर चिन्तन की झलक भी सर्वत्र मिलती है। विशेष रूप से उनके समीक्षात्मक निबन्धों में बुद्धितत्त्व का प्राधान्य सर्वत्र परिलक्षित होता है। मिश्रजी की निबन्ध-शैली की एक अन्यतम विशेषता यह है कि उनके भावात्मक निबन्धों में भी स्थल-स्थल पर गम्भीर और मौलिक चिन्तन का परिचय मिलता है। उदाहरण के लिए उनके 'पार्थिव धर्म' नामक निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—'कई बार मैंने इस पर विचार किया है कि पृथ्वी का धर्म वस्तुतः क्या है, पृथ्वी की वह कौन-सी नैसर्गिक और सतत प्रक्रिया है जो उसे पृथ्वी का अभिधान, पृथ्वी का आकर्षण दिए हुए है, उसका कौन-सा गुण है जो उसकी नानाभाषी, नाना-धर्मी सन्तानों को स्नेहबद्ध किए हुए है ? मैं शास्त्रों के पास गया। न्यायशास्त्र ने कहा पृथ्वी का धर्म गंध है, मिट्टी की पहचान उसकी सुरभि है। ज्योतिष ने कहा पृथ्वी का गुण है उसकी परिक्रमा जो उसकी की जाती है चन्द्र द्वारा। विराट् पुरुष की आंख के इशारे पर नाचने वाली पृथ्वी के पीछे विराट् पुरुष का मन चक्कर काटा करता है। इतिहास ने अपनी सम्मति दी : पृथ्वी का धर्म है क्षमा···पुराणों ने अपनी पुरानी कहानी दुहरायी : पृथ्वी गौ है, दूध देना उसका धर्म है, जब उसने दूध देना किसी समय बन्द कर दिया तो प्रभु ने हिमालय को वत्स बनाकर उसे दूहा था और उसी दिन से वह पृथ्वी कहलायी।" इसी प्रकार समीक्षात्मक निबन्धों में भी मिश्रजी के गम्भीर चिन्तन के दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए उनके 'रीति विज्ञान : परिधि और प्रयोजन' नामक निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"शैली का प्रयोग प्राचीन वाङ्मय में

साहित्येतर-विधाओं के संदर्भ में प्रादेशिक विशेषताओं का कला-सम्प्रदायगत विशेषताओं को जतलाने के लिए हुआ है या किसी व्यक्ति की साहित्यिक अभिव्यक्ति की विशेषताओं को जतलाने के लिए आधुनिक समीक्षा-साहित्य में हुआ है, इस दृष्टि से उपयुक्त भाषागत सर्जनात्मक वैशिष्ट्य को बोधित करने के लिए शैली का प्रयोग उतना संगत नहीं जान पड़ता। इस अर्थ में रीति शब्द का प्रयोग ही अधिक उपयुक्त जान पड़ता है क्योंकि शुद्ध रूप से सामान्य भाषा के विशेष गुणों के आधार के विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण करने के लिए ही रीति शब्द प्रयुक्त हुआ है या साहित्य के बाहर सामाजिक व्यवहार की किसी व्यापक सामान्य विशेषता का बोध न कराने के लिए प्रयुक्त हुआ है। इन दोनों दृष्टियों से जब हम प्रस्तुत सन्दर्भ में बात करना चाहते हैं तो भाषागत 'स्टाइल' के लिए 'रीति' शब्द और लिंग्वो स्टाइलिस्टिक' के लिए 'रीति-विज्ञान' शब्द अधिक उपयुक्त समझते हैं।

(ङ) **विश्लेषणात्मकता**—मिश्रजी की निबन्ध-शैली की एक अन्यतम विशेषता यह है कि उनके निम्बन्धों में स्थल-स्थल पर विश्लेषणात्मकता अथवा शोधपरकता के दर्शन होते हैं। भावात्मक निबन्ध हों अथवा समीक्षात्मक या विचारात्मक सर्वत्र निबन्धकार की शोधपरक पैनी दृष्टि बराबर दीखती है। उदाहरण के लिए उनके एक निबन्ध 'नयी पीढ़ी की बेचैनी : भारतीय सन्दर्भ' की निम्न पंक्तियां देखिए—"उदाहरण के लिए गोमांस भक्षण की बात लीजिए, वेदों में इसका उल्लेख है या नहीं है, यह बहस संगति क्यों रखे, जब हम मानते हैं वेद एक विवर्त्तमान सत्यानुसन्धित्सा का उपलक्षण है, वेद का समग्रार्थ संहिता या ब्राह्मण ही नहीं, पुराण, काव्य, लोकगीत—यह सब मिलकर है। नहीं तो तुलसी के रामचरित मानस के विश्वनाथजी के मन्दिर में संहितादि सबसे ऊपर अपने-आप चले जाने की अनुप्रथा का और क्या तात्पर्य हो सकता है। इतिहास में क्या था, इसका महत्त्व हमारी दृष्टि में उतना नहीं जितना कि परम्परा के द्वारा परिवर्धित अर्थ का है। गौ के प्रति मध्ययुग के ईश्वरभावित मानववाद की एक रागात्मक श्रद्धा है, जो उसकी समग्र दृष्टि का अविभाज्य अंग है और आज के हिन्दू के लिए इस श्रद्धा का वही महत्त्व है जो पश्चिम में मनुष्यों के प्राणों के प्रति आदर-भाव का है। परन्तु पश्चिम की खण्ड दृष्टि के शिकार ऐतिहासिक प्रामाण्य और आर्थिक कारण मीमांसा के चक्कर में पड़कर धर्म की एक अत्यन्त खण्डित और भ्रमपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

(४) शैली-वैविध्य, अभिव्यक्ति सम्बन्धी विविधता—मिश्रजी ने अपने ललित-निबन्धों में विविध प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है। उनका मूल उद्देश्य अभिव्यक्ति को मार्मिक और सजीव रूप प्रदान करना है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने कहीं तो गूढ़-गुम्फित शैली का प्रयोग किया है तो कहीं विक्षेप शैली का और कहीं धारा शैली का। इसी प्रकार मिश्रजी ने कहीं-कहीं तरंग-शैली का प्रयोग करके पाठकों को गद्य-काव्य का-सा आनन्द प्रदान किया है। यद्यपि इस सम्बन्ध में मिश्रजी के निबन्धों की भाषा-शैली के प्रकरण में विस्तार से विचार किया गया है तथापि प्रस्तुत प्रसंग में दो-एक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

(१) गूढ़-गुम्फित शैली—गूढ़-गुम्फित विचारों और विषयों की अभिव्यक्ति के लिए गूढ़-गुम्फित शैली का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए उनके एक निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—'काव्यार्थ का रहस्य शब्द से ही उन्मीलित होता है। हां, उन्मीलन का साधन शब्दार्थ-नियम-ज्ञान के अतिरिक्त एक पदार्थ होता है जिसे 'प्रतिभा' कहा गया है। प्रतिभा शब्द और अर्थ के सम्बन्धों को एक से अधिक धरातलों पर उठाकर उन्हें एक-दूसरे की ओर चालित करने की रचयित्री शक्ति है। वह शब्द और अर्थ साहित्य के निरन्तर अभ्यास से उत्पन्न संस्कार है। कलात्मक सर्जन के क्षेत्र में वस्तुजगत् या अनुभव-जगत् का सिद्धरूप से साध्य कलावस्तु या कलानुभूति के रूप में रूपान्तर हो जाता है और परिणाम-वश एक नए प्रकार का अन्तरावलम्बित और अन्तःसम्बद्ध सगठन उद्भूत हो जाता है।

(२) तरंग शैली—मिश्रजी ने कहीं-कहीं तरंग शैली का प्रयोग करके गद्य का-सा आनन्द उत्पन्न कर दिया है। उदाहरण के लिए एक निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"पहले फूल आते हैं, तब पल्लव आते हैं, तब भौंरे आते हैं और तब कोयल बोलती है। पहले कोई भी सिद्धांत हो, कोई भी मत हो, पूर्ण विकसित रूप में सामने आता है, उसकी कीर्ति का सौरभ दूर-दूर तक अनुकूल पवन द्वारा बगराया जाता है, तब उसमे नए विचारों की नई कोंपलें भी निकलती हैं। इन नई कोंपलों के सघन पत्र जाल में नए पक्षी भी कल-कूजन करने आते हैं।"

(३) विक्षेप-शैली—मिश्रजी के अनेक निबन्धों में विक्षेप-शैली का प्रयोग भी मिलता है। ऐसे स्थलों पर निबन्धकार की भाषा में एक कवित्वमयता की

सहज-सृष्टि हो जाती है। उदाहरण के लिए उनके एक निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"सम्पादक जी, आप सोचते होंगे कि भ्रमरानन्द ने आज गहरी विजया छानी है तभी यह अकाल रुदन कर रहा है। पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि इस समय तो नशा हिरन हो गया है। ये प्रदर्शनियां वसन्त आते-आते समाप्त हो जाएंगी। चुनाव-रूपी अनंग शर-संधान करने वाला है। रंग-विरंगी झाड़ियां खिलने वाली हैं, पन्द्रह फीसदी के कोटा के अयाचित वरदान के फलस्वरूप नई-नई कलियां चिटकने वाली हैं। नव-वसन्त में नए वंदीजनों की कूक पर नए-नए गुल खिलने वाले हैं। यह नया अनंग असंख्य मोटरों की धूलि से अपने हाथ धुरिया-धुरियाकर नए निशानों पर तीर बिठलाने वाला है। कबीर के अलापों के नए संस्करण होने वाले हैं। भ्रमरानन्द के कविता-जीवी वर्ग के लिए इस धमा-चौकड़ी में कोई स्थान नहीं। चुनाव के मदन-ज्वर की समाप्ति के बाद जब गर्द बैठ जाएगी तब भी हमें कोई पूछने वाला नहीं होगा।"

(छ) **हास्य-व्यंग्यपूर्ण सरस कटाक्षपूर्ण शैली का प्रयोग**—मिश्रजी ने अपने ललित निबन्धों को मार्मिक और सजीव अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए अनेक स्थलों पर स्वस्थ और विनोदपूर्ण व्यंग्य का भी सफल प्रयोग किया है। निश्चय ही इस प्रकार की कटाक्षपूर्ण शैली के प्रयोग से उनके निबन्धों में एक अद्भुत लालित्य और माधुर्य का समावेश हो गया है। बाह्यतः सामान्य से दीखने वाले विषयों का विवेचन करते समय भी निबन्धकार ने शिष्ट हास्य का प्रयोग करके निबन्धों में एक विचित्र आकर्षण उत्पन्न कर दिया है। उदाहरण के लिए उनके 'हिप्पी पंथ' नामक निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"भ्रमरानन्द यह लीला देख-देखकर स्तब्ध हैं। हे लीलामय, यह क्या हो रहा है? हिन्दुस्तान हाथ पसारकर भीख मांग रहा है: हमें अपना सत्त-निकला गेहूं दो, रसायनों के बल पर बीस-बीस साल साबूत रखा मक्का दो, अपना यंत्र-कौशल दो, अपनी लाल-पीली-हरी रोशन की यन्त्रबद्ध भाषा दो। और इस पूंजीवाद देश का तरुण हाथ पसार-कर उस भिखमंगे से भीख मांग रहा है—अपने समान की भस्म दो, अपनी दरिद्रता दो, यह ऐश्वर्य, यह जीवन नहीं सहा जा रहा है। हमारा प्यारा हिन्दुस्तान खुले हाथ लुटा रहा है—यह ले जाओ ओड़िसा की कल्चर चांदी की क्लिप, यह लो कश्मीर की नवनीत कामिनी के हाथ का कढ़ा शाल, यह ले जाओ शान्ति निकेतन की कर-मुद्रा, यह ले जाओ बनारसी कांस्य की घंटी—यह लो हीर-रांझा का बिगुल, यह

लो सुर्ख-लहू-सी मद्रासी चद्दर। हमारी संस्कृति का हर तामझाम बिकाऊ है।" इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि मिश्रजी ने अपने ललित-निबन्धों में बहुत शैलियों का प्रयोग करके सामान्य और गम्भीर सभी प्रकार के विषयों से सम्बन्धित निबन्धों में एक अद्भुत आकर्षण और रोचकता बनाए रखी है। उनके निबन्धों में उनके व्यक्तित्व की छाप सर्वत्र परिलक्षित होती है। उनका प्रत्येक निबन्ध उनके समर्थ और महान् व्यक्तित्व का परिचायक है।

श्री विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों की भाषा-शैली

निबन्ध हिन्दी साहित्य की एक अपेक्षतया नई विधा है किन्तु यह दुर्भाग्य ही है कि साहित्य की अन्य विधाओं जैसे कि कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक आदि की तुलना में निबन्ध की विधा जनसाधारण के भीतर रम नहीं पायी है। इस स्थिति के अनेक कारण हो सकते हैं, तथापि इसका मूल कारण यही रहा है कि अधिकांश निबन्धों में सहज-सम्प्रेषणीयता का अभाव रहा है। निश्चय ही प्रबुद्ध पाठकों का भी अभाव एक कारण हो सकता है किन्तु यह निर्विवाद है कि यदि निबन्धों की भाषा-शैली में सहज सम्प्रेषणीयता का गुण हो तो कोई कारण नहीं है कि निबन्धों को भी कविता, उपन्यास आदि की तरह रुचि के साथ न पढ़ा जाए।

प्रायः होता यह है कि निबन्धकार पांडित्य के मोह का संवरण नहीं कर पाते और इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि निबन्ध का विषय अनावश्यक शब्द-जंजाल में फंसा रहता है। निबन्ध का स्वरूप कुछ निबन्धकार के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। जहां तक मिश्रजी के निबन्धों का प्रशन है यह निश्चित है कि उनके सारे निबन्धों में उनका व्यक्तित्व बोलता हुआ दीखता है। उनके निबन्धों की एक अन्यतम विशेषता उनकी सहजता और प्रवाहमयता है। उनके किसी भी निबन्ध को पढ़कर ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वे योजनाबद्ध रूप से सोचकर निबन्ध लिखने बैठ गए हों। इस सम्बन्ध में स्वयं मिश्रजी के निम्न शब्दों पर विचार करना होगा—"आज जब मैं काफी लम्बे अरसे के बाद नया निबन्ध-संग्रह लेकर उपस्थित हो रहा हूं तब सोचता हूं निबन्ध क्यों और किसके लिए लिखता हूं। कभी-कभी लगता है मेरा मुंह बिरा रहे हैं! कभी-कभी लगता है मेरे निबन्ध मुझे अनदेखी अनचीन्हीं गलियों में घसीट रहे हैं, जिनमें जाते हुए डर लगता है। और कभी-कभी लगता है निबन्ध लिखना मेरी लाचारी है, अपने

अस्तित्व को कायम रखने का एकमात्र साधन है। इसलिए ढेर सारे कार्यों में डूब जाता हूं। तब भी निबन्ध के माध्यम से सांस लेने की छटपटाहट ही ऊपर ला देती है। यह सही है, बहुत कम लिख पाता हूं क्योंकि बहुत कम मैं अपना हूं। सारी जिन्दगी लगता है, रहन (बन्धक) रख दी गई है, एक धुंईले घुटन-सी कुहासे के यहां, एक बतास-गुम सन्नाटे के नीरव क्रन्दन के गोल। इस कुहासे को चीरने की जब-जब कोशिश करता हूं तब-तब लगता है कुहासे के पार से आने वाली किरन मुझे ही चीरने को दौड़ी आ रही है और मैं एक कुहासे की एक पर्त ओढ़कर अपने बचाव की बचकानी कोशिश करता हूं। एक औसत बुद्धिजीवी की जिन्दगी में कुहासा बन्धन भी है बचाव भी है, क्योंकि दूसरा बचाव कोई है भी तो नहीं।"

मिश्रजी के उपर्युक्त शब्दों से यह स्पष्ट हो जाता है कि निबन्ध-लेखन उनके जीवन का एक सहज अंग बन गया है। उनके निबन्ध उनकी लेखनी से स्वतः स्फूर्त होते लगते हैं, सायास रचना की तरह नहीं। कदाचित् इसी कारण उनके निबन्धों की भाषा-शैली में एक सहज-सम्प्रेषणीयता स्वतः समाहित हो गई प्रतीत होती है।

भाषा-शैली का प्रत्यक्ष सम्बन्ध निबन्ध के बहिरंग अर्थात् कला-पक्ष से है। यद्यपि भाषा-शैली परस्पर अभिन्न तत्त्व है फिर भी अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इन दोनों तत्त्वों पर पृथक-पृथक् विचार किया जा सकता है। भाषा के माध्यम से निबन्धकार अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है और अभिव्यक्ति की इस प्रणाली को ही शैली की संज्ञा दी जाती है। इस आधार पर मिश्रजी के निबन्धों को भाषा-शैली पर दो उप-शीर्षकों के अन्तर्गत विचार किया जा सकता है—पहला तो विद्यानिवास मिश्रजी के निबन्धों की भाषा और दूसरा मिश्रजी के निबन्धों की शैली अथवा अभिव्यक्ति-प्रणाली।

(क) **विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों की भाषा**—मिश्रजी के निबन्धों की भाषा का विश्लेषण करने पर उसकी निम्नलिखित विशेषताएं उभरकर सामने आती हैं—

१. **प्रसंगगर्भत्व**—मिश्रजी की भाषा में प्रसंगगर्भत्व का गुण प्रचुर मात्रा में मिलता है जिसका सहज परिणाम यह है कि उनकी भाषा में जहां एक ओर विशिष्ट अर्थ-सौन्दर्य की सृष्टि होती है वहां गूढ़-भाव-व्यंजना के चमत्कार के दर्शन भी होते हैं। इस दृष्टि से उनके एक निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—

"सम्पादक जी, आप भी सोचते होंगे कि भ्रमरानन्द इस तरह बूढ़ों की-सी बातें क्यों करने लगा? कुर्सी छोड़ते ही यह गद्दीधारी क्यों बनने लगा? पर क्या बतलाऊं। जब बूढ़े ययातियों को काम और अर्थ सताने लगा है और वे पुरुषों को धर्म की थाती सौंपने को आकुल हैं तो फिर चारा ही क्या है? भ्रमरानन्द को अपने यौवन के एवज में बुढ़ौती लेनी ही होगी।"

२. **व्यंग्य-विनोद की प्रचुरता**—अपनी अभिव्यक्ति को मार्मिकता और सजीवता प्रदान करने के उद्देश्य से मिश्रजी ने अपने निबन्धों में यत्र-यत्र व्यंग्य-विनोदपूर्ण भाषा का प्रयोग भी किया है। उदाहरण के लिए उनके एक निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"विश्वविद्यालय का प्रशासन अब जमींदाराना ढंग से होने लगा है, उपकुलपति अब राजा और विश्वविद्यालय प्रजा के बीच की मजबूत कड़ी बन गया है। वह प्रत्येक प्रश्न को वैद्धिक या मानवीय दृष्टि से न देखकर प्रशासकीय प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखने के लिए लाचार है (सरकार की इज्जत का ठेका जो उसके पास है)। इस जमींदारी में सत्ता की मजबूती के लिए मुसाहिबों, चरकटों और चाकरों की नई संस्था भी जरूर हो गई है।"

३. **प्रवाहमयता**—मिश्रजी के निबन्धों की भाषा की एक अन्यतम विशेषता उसकी प्रवाहमयता है। उनकी भाषा उनके व्यक्तित्व की ही तरह सहज और स्वाभाविक बन पड़ी है। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में, "आपकी भाषा में नई चुहल, नई चुस्ती, नया चुलबुलापन, नया अंदाज, नया आवेश, नया जोश है जो भाषा को प्रवहमान बनाता हुआ अभिव्यक्ति को तरल, सरस एवं रसीला बना देता है।" इस संदर्भ में मिश्रजी के एक निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"पहले तो यह था कि कभी ससुर तीसरे दर्जे में चलेगा तो उसका दामाद भी उसी दर्जे में चलेगा। अगर नहीं चलेगा तो वह दामाद नहीं रह पाएगा। बेटी के लिए दूसरा दामाद ढूंढ़ा जाएगा। पहले बाप पहले या दूसरे दर्जे में और बेटा नौकर वाले दर्जे में एक साथ चल सकते थे पर—अब पहले दर्जे में बेटा तीसरे दर्जे में चलने वाले बाप को बाप नहीं कहेगा। कारण यह है कि अब केवल दो दर्जे हैं: एक गद्दीदार और दूसरा काठोवाला।······एक में शय्या प्रकाश, रात्रि प्रकाश और प्रकोष्ठ प्रकाश······दूसरे में एक-सा प्रकाश या अंधकार बना रहता है। एक में सीमित प्रवेश, दूसरे में बेरोक-टोक घुसने की आराधना। इन दोनों के बीच जो था, वह बेचारा अब अन्तिम सांस ले रहा है। यह सामाजिक न्याय ही

सहज परिणति है।

४. **सूक्तियों का प्रचुर प्रयोग**—मिश्रजी ने अभिव्यक्ति की सजीवता एवं
प्रामाणिकता प्रदान करने के उद्देश्य से सूक्तियों का भी प्रचुर प्रयोग किया है। उदा-
हरण के लिए कुछ सूक्तियां देखिए—"पृथ्वी पर जन्म लेकर जिसको उसके सुन-
हले फला का सौरभ नहीं मिला, उसका जन्म व्यर्थ है, जैसे बिना अनुभव के ज्ञान
पंग है वैसे ही बिना वाद के विवाद अर्थशून्य है, पार्थिव कल्याण परमार्थ का पहला
सोपान है, परम्परा वस्तुतः कोई कालबद्ध चेतना नहीं है, राजनीति स्वतः गन्दी
नहीं होती, वह जब बंध जाती है तभी गन्दी होती है, पुरुषों में अग्र वही होता है
जो सब पुरुषों के हृदय के साथ एकाकार होता है।

५. **लाक्षणिकता**—मिश्रजी ने अपने निबन्धों की भाषा में लाक्षणिकता
शब्दावली का प्रयोग करके अद्भुत अर्थ-सौन्दर्य की सृष्टि की है। इस प्रकार
उनकी भाषा में गुरुता और गम्भीरता के साथ-साथ अर्थ-सौन्दर्य की नई-नई
छटाएं भी देखने को मिलती है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है—"चाहे कोई सताया
हुआ व्यक्ति मुकदमा करे या चाहे उकसाया गया व्यक्ति मुकदमा करे, सत्ताधीश
की गोटी हर तरह लाल रहती है। जेठ की रात बिच्छू उतारकर विश्राम की
तैयारी कर रही थी, केवल कभी-कभी इक्के-दुक्के लेखक के मन में जातीय एने-
मिया का दर्द बनकर जाग गया, सुलगा, पर यह धधक न सका, गांव-देहात में
देखता भी है तो ऐसे राहु की छाया में ग्रस्त जो अपने जीवन का समूचा अमृत
निगल जाने को कृतसंकल्प है, आज की युवा-पीढ़ी की बेचैनी इसी व्यवस्था की
प्रसव-वेदना है, अब तो तीसरा वर्ग भी बिना बाप का हो गया, आदि-आदि।

६. **आलंकारिक पदावली का प्रयोग**—मिश्रजी के निबन्धों में आलंकारिक
पदावली का भी प्रचुर प्रयोग किया गया है जिसके फलस्वरूप कई स्थलों पर उनके
निबन्धों की भाषा विलक्षण शृंगार से सजी हुई दीखती है। उदाहरण के लिए
कतिपय पंक्तियां देखिए—"गोस्वामी तुलसीदास ने…अतल गहराई से मुक्ताओं
को निकालकर रामचरित के तागे में गूंथने की कोशिश की, इस मालाभरिणी के
थोड़े-से फूल और हाथ की छाप भर नन्दन ने मुझसे मेरा गोकुल छीन लिया, मेरा
वृन्दावन छीन लिया, मेरा वंशीवट छीन लिया, भैया साहब दुपहर के पानी की
तरह उन तमाम प्रतापी सूर्यों के विद्रोह में प्रखर रहे हैं जिन्होंने अपने ताप से
दूसरों की सत्ता मिटानी चाही है आदि-आदि।"

७. **मुहावरों का प्रयोग**—मिश्रजी की भाषा में मुहावरों का भी अत्यन्त प्रभावोत्पादक प्रयोग किया गया है। मुहावरों का प्रयोग अत्यन्त सटीक और सार्थक रूप में किया गया है जिससे अभिव्यक्ति का सौन्दर्य देखते ही बनता है। मिश्रजी द्वारा प्रयुक्त कतिपय मुहावरे इस प्रकार हैं: नींद हराम होना, मुह जोहना, कौड़ी बराबर मोल न होना, हिकारत की निगाह से देखना, नक्शा बदल देना, खाई और चौड़ी होना, अन्तिम सांस लेना, बावेला मचाना, सिर पर शामत सवार होना, धूल में से हीरे उपजाना, अरण्य रोदन करना, भूत सवार होना, कुएं मे भांग पड़ जाना, कानों में जूं रेंगना, आदि-आदि।

८. **शब्द-सम्पदा**—मिश्रजी की भाषा में अधिकांशतः संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों का प्रयोग मिलता है जैसे कि कंटकाकीर्ण, प्रतिच्छादित, असमाधेय, प्रक्षालित धरित्री, अनुस्यूत, उपान्त, अनवधान, चाकचिक्य, आतिथेय, प्रामाण्य, दैनंदिन, परिपार्श्व, प्रातराश, जीवन्मृत, तपोमूर्ति, सान्द्रता, किंजल्क, पुंस्कोकिल, रस-स्राव, ऊर्ध्वमुख, आयत, स्तवक, वैदुषिक आदि-आदि। इसके अतिरिक्त मिश्र जी ने यथास्थान उर्दू-फारसी के शब्दों का भी खुलकर प्रयोग किया है जैसे कि बगावत, मुगालत, जहालत, रस्मअदायगी, गैररस्मी, उजबक, बकलमखुद, इत-अस्सुबी, फतवा, नस्ल-परस्ती, आरामगाह, पुरअसर, लकदक, इजारेदारी, ख्वाह-ख्वाह, मादरी जबान, तशखीस, महरूम, दुश्वार, महसूस, फरार आदि। यही नहीं, मिश्रजी ने अभिव्यक्ति को मार्मिकता प्रदान करने के लिए अंग्रेजी के अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग भी किया है जो कि सामान्य व्यक्ति की बोलचाल की भाषा में घुलमिल चुके हैं—इस प्रकार के कुछ शब्दों के उदाहरण निम्नानुसार हैं—शार्क-स्किन, बुश-शर्ट, प्लानिंग, गजट, टेक्नीकल, पोस्टमार्टम, पैडिल, करेंट, बीटल, हैप्पीनेस, इक्वैलिटी, स्पोण्ड, गारण्टी, फासिस्ट, लिबर्टी, सक्यूलर, मीटिंग, फोटो-ग्राफी, क्लासिक, डिनर, प्रोड्यूसर, कम्पटीशन, कम्पोजिट, कल्चर, टेंटलाइजिम, मिनिस्टर, इण्टर, साइड, बिजनिस, वोर, क्रीमरोल, अपटूडेट, स्क्वायर, रेस्तरां, गाइडेंस, आडीटर, फिल्म, ट्रेन, सीट, डिस्ट्रिक्ट, जीप, परेड, रेलवे आदि।

मिश्रजी की भाषा में लोक-भाषाओं में प्रचलित शब्दों का भी काफी प्रयोग मिलता है। इस तरह के कुछ शब्द हैं: लहालोट, तपखी, रहठा, अगेल, अटार, चचुआ, छोटी, जाटि, ईछना, खरौरी, चांचर, फुआ, गोइंठी-गोहरा, फगुहरे, अड़ार्नी, अदहन, इनरी, कज्जक, कड़खा, टापरा, डाई, घुखा, नाधा, पछखी,

हाबुस, हेंमड़ी, कोदो, कीचकादों, बेंहन, अल्हड़त, ठंठ, सेंवती, ओरी आदि।

विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों की शैली अथवा अभिव्यक्ति प्रणाली

विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों की शैली का विश्लेषण करने पर उसकी निम्न-लिखित विशेषताएं उभरती हैं—

१. **गूढ़-गुम्फित शैली**—गूढ़ विषयों के लिए निबन्धकार को प्रायः गूढ़ गुम्फित शैली का प्रयोग करना होता है। वस्तुतः शैली का प्रयोग किसी पूर्व निर्धारित योजना अथवा क्रम के अनुसार नहीं होता अपितु विषय की गरिमा और प्रसंग की गम्भीरता देखते हुए शैली का प्रयोग किया जाता है। इसी आधार पर मिश्रजी ने यहां गूढ़ और गहन विषयों के विवेचन के लिए गूढ़-गुम्फित शैली का प्रयोग किया है वहां कहीं-कहीं तरंग शैली का और कहीं-कहीं विक्षेप शैली का तथा इसी प्रकार कहीं व्यंग्य विनोदपूर्ण-शैली का तो कहीं प्रभावशाली आलोचनात्मक शैली का प्रयोग किया है। प्रस्तुत संदर्भ में गूढ़-गुम्फित शैली की एक बानगी देखिए—"प्रतिभा शब्द और अर्थ के सम्बन्धों से एक से अधिक धरातलों पर उठाकर उन्हें एक-दूसरे की ओर चालित करने की रचयित्री शक्ति है। वह शब्द और अर्थ के साहित्य का निरन्तर अभ्यास से उत्पन्न संस्कार है। कलात्मक सर्जन के क्षेत्र में वस्तु जगत या अनुभव-जगत का सिद्ध रूप से साध्यकला वस्तु या कलानुभूति का रूप में रूपान्तर हो जाता है। और परिणामवश एक नए प्रकार का अन्तरावलम्बित और अन्तःसम्बद्ध संघटन उद्भूत हो जाता है।

२. **धारा-शैली**—धारा-शैली की विशेषता यह होती है कि उसमें गद्य काव्य से सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। मिश्रजी ने अपने ललित-निबन्धों में कहीं-कहीं धारा-शैली का प्रयोग भी किया है। उदाहरण के लिए उनके एक निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"पता नहीं कब से फगुआ गाया जाता है : कब से द्वार-द्वार मोहन फाग खेलने आ रहे हैं, शिवशंकर गौरी के साथ चिताभस्म और अबीर को उड़ाने आ रहे हैं, एक संवत्सर की चिता पर दूसरे संवत्सर का बीज बोया जा रहा है, पार्थिव धूल से भरे हुए गगन में रंग की पिचकारियां चलाई जा रही हैं, अंग-अंग में रंग और अलकों में अबीर भरे ललनाएं अनंग को सांगोपांग करने के के लिए उमगती रही हैं, उफ, झांझ और मृदंग इस आनन्द को उद्वेलित करते रहे हैं। प्रीति की रीति सामाजिक, आर्थिक और वैयक्तिक सभी प्रकार की कुण्ठाओं, मर्यादाओं और बाधाओं को नकार करके ऊंचे गले आज के दिन टेरती रही हैं।

३. **विक्षेप शैली**—विक्षेप शैली के अन्तर्गत निबन्धकार कवित्वमयी भाषा में अपने हृदयस्थ भावों और विचारों को अभिव्यक्त करता है। मिश्रजी ने भी कहीं-कहीं विक्षेप शैली का भी प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए उनके एक निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"सम्पादक जी, आप सोचते होंगे कि भ्रमरा-नन्द ने आज गहरी विजया छानी है, तभी वह यह अकाल रुदन कर रहा है, पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि इस समय तो नशा हिरन हो गया है। ये प्रदर्श-नियां वसंत आते-आते समाप्त हो जाएंगी। चुनाव रूपी अनंग शरसंधान करनेवाला है। रंग-बिरंगी झण्डियां खिलने वाली हैं, पन्द्रह फीसदी के कोटा के अयाचित वरदान के फलस्वरूप नयी-नयी कलियां चिटकने वाली हैं। नव वसंत में नए वंदी-जनों की कूक पर नए-नए गुल खिलने वाले हैं। यह नया अनंग असंख्य मोटरों की धूलि से अपने हाथ धुरिया-धुरियाकर नए निशानों पर तीर बिठलाने वाला है। कबीर के अलापों के नए संस्करण होने वाले हैं। भ्रमरानन्द के कविताजीवी वर्ग के लिए इस धमा-चौकड़ी में कोई स्थान नहीं। चुनाव के मदन ज्वर की समाप्ति के बाद जब गर्द बैठ जाएगी तब भी हमें पूछने वाला न होगा।"

४. **व्यंग्य-विनोदपूर्ण शैली**—मिश्रजी के ललित-निबन्धों में अनेक स्थलों पर व्यंग्य-विनोदपूर्ण शैली के दर्शन भी होते हैं। इस दृष्टि से उनके एक निबन्ध 'हिप्पी पंथ' की निम्न पंक्तियां देखिए—"अन्त में सोचा कि बस एक उपाय है। पान का आस्वादन कराऊं। सो मैंने पूरी रहस्यमयता के साथ साधक हिप्पी को ताम्बूल दीक्षा दी। उन्हें बतलाया कि पान साक्षात् शक्ति है, सुपारी चक्र साधन है और कत्था और चूना महामिलन के पर्याय हैं, इसमें खोंसी हुई लौंग वसन्त की श्री है और इसके साथ रंचमात्र जाफरानी लो, यह परम विज्ञान है। इसे धीरे-धीरे मुंह में घुलाओ। और पान की दीक्षा बड़ी कारगर सिद्ध हुई। यह है सुपारी इन्हें कच्ची चाहिए, एक तो नरम होती है, दूसरे वह नशीली भी होती है और पत्ती काली चाहिए, जाफरानी ऊंचाई तक चढ़ नहीं पाती। कहिए, भ्रमरानन्द की निर्यात बुद्धि जोरदार है न?"

५. **आलंकारिक-शैली**—अभिव्यक्ति में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए और अर्थ-सौन्दर्य को विलक्षणता प्रदान करने के लिए आलंकारिक शैली का प्रयोग किया जाता है। मिश्रजी के निबन्धों में भी इस प्रकार की आलंकारिक शैली का प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए उनके एक निबन्ध की निम्न पंक्तियां

देखिए—"जिनके पांडित्य की हिनानी के नीचे लोकहृदय की निर्झरिणी निरन्तर झरती रही, जिनकी ज्ञान की पूर्णता से अधिक ज्ञान की निरन्तरता की चिन्ता थी जिनकी विस्मृति भी निश्चल ममता की धारा बन गई और जिनके अवधूत संस्कार ने हीउन्हें हिमालय के क्रोड़ में चिरनिन्द्रा दी। केदार हिमालय की गोद के शृंगार थे। अपनी ऋजुता, प्रकाशमयता और शत-सहस्र धाराओं में प्रवाहशीलता के द्वारा जिन्होंने हिमालय की विरासत आजीवन संभाली, वे विदा हो गए, जब हिमालय संकट में था और उस हिमालय की ही कन्या हिन्दी की गंगा संकट में है।"

६. लाक्षणिक-शैली—मिश्रजी ने अभिव्यक्ति में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए कहीं-कहीं लाक्षणिक शैली का प्रयोग भी किया है। उदाहरण के लिए उनके एक निबन्ध की पंक्तियां देखिए—'साधारण आदमी की आकांक्षा किसी के पुचकार पर ऊपर नहीं उठी है, उठी है अपरिहार्य स्थिति के रूप में, उससे भयभीत हों वे, जिनकी जड़ें कहीं और हैं, हिन्दुस्तान का लेखक कम-से-कम बेघर नहीं है, उसके ऊपर वरदहस्त देने का भाव भी उनके मन में जगे, जो स्वाहा हो चुके हों, पर जो तटस्थ रहे हैं, उन्हें उस आकांक्षा में भी अपने को विलीन करना चाहिए, उस आकांक्षा के ऊपर हसेंगा वह, जो पागल है, और शीशमहल से बाहर आना ही नहीं चाहता। लेखक को जयकार भी नहीं करनी है, उसे इस आकांक्षा की संवेदना निर्व्याज भाव से अपनी रचना में उतारनी है। बहुत से झूठ ढहे पर जो सत्य खड़ा होगा, उसकी एक-एक ईंट की परख लेखक ही कर सकता है। जुड़ाई भी उसी के हाथों पक्की होगी।"

७. व्याख्यात्मक-शैली—मिश्रजी ने अपने निबन्धों में अर्थ-सौन्दर्य की नई-नई छटाओं के निरूपण के उद्देश्य से व्याख्यात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। निश्चय ही ऐसे स्थलों पर उनकी भाषा में लोक-भाषाओं के शब्दों का सहज समावेश हो गया है। उदाहरण के लिए उनके एक निबन्ध की निम्न पक्तियां देखिए—"नदी का जल 'स्थिर' तो रहता नहीं, वह हमेशा चंचल है, यही है कि कभी कम और कभी ज्यादा। कभी तो उसमें 'बुलबुले' उठते हैं और फिर 'बल्ले' उठते हैं. फिर हल्की-सी 'हिलोर' उठती है, फिर यकायक 'लहर' झूमने लगती है। दो लहरें हवा का रुख पाते ही 'भेड़िया' बन जाती हैं और नदी लपेटा मारने लगती है और बाढ़ भी 'ऊफ़ान' में हो तो कहीं-कहीं 'आवर्त' चक्रावर्त या भंवर बनकर बड़ी-बड़ी नावों को आफत में डाल देती है। जहां धारा मन्द होती है वहां नदी

अगम 'अथाह' होती है, भंवर की जगह प्रायः 'औंडा कुंड' (अवट) या 'चन्द्र' होती
है।

८. **विश्लेषणात्मक शैली**—मिश्रजी ने अपने कतिपय व्याख्यात्मक समीक्षा से
सम्बन्धित विषयों के विवेचन में विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग भी किया है।
इस प्रकार के प्रयोग से साहित्यिक विवेचना का एक नया आयाम उभरकर आया
है। इस दृष्टि से उनके एक निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"राम की शक्ति
पूजा के संरचनात्मक विश्लेषण में पहले कुछ कठिनाइयों की ओर ध्यान दिलाना
आवश्यक है। पहली कठिनाई है, पूरी कविता का लगभग एक-सा छन्दोविधान।
इसके कारण कविता के नाटकीय मोड़ों को पकड़ने में थोड़ी-सी कठिनाई होती है।
दूसरी कठिनाई है, शक्ति की विविध अभिव्यक्तियों के क्रम में संगति ढूंढ़ने की।
तीसरी कठिनाई है, पूरी कविता की ध्वनि-मुखरता के कारण और दो-दो पंक्तियों
के तुक के मेल के कारण अर्थ को सूक्ष्मतर पर ग्रहण करने में।"

९. **प्रभाववादी आलोचनात्मक शैली**—मिश्रजी के निबन्धों में, विशेष रूप
से आलोचनात्मक निबन्धों में, प्रभाववादी आलोचनात्मक शैली का प्रयोग मिलता
है। इस दृष्टि से उनके एक निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"द्विवेदीजी के
निबन्धों को मैंने पहले नहीं पढ़ा था, मैंने पढ़ा था उनका उपन्यास 'बाणभट्ट की
आत्मकथा'। उसके गद्य का जादू मन पर उतना नहीं छाया जितना उसके पात्रों
का। किशोर चित्त पर भर्वुशर्मा और भैरवी तुरन्त छा गए, संस्कृत में मूल
कादम्बरी और हर्ष-चरित पढ़ने के संस्कार ने भट्टिनी कादम्बरी, सुसंगता
महाश्वेता, निउनिया-पत्रलेखा समीकरण बना डाले, पर गहरा प्रभाव निउनिया
का ही पड़ा, वही निउनिया मैना होकर 'चारुचन्द्रलेखा' में पुनः अवतीर्ण हुई।
द्विवेदी जी की निउनिया समष्टि-चित्त के पारावार के ऊपर व्यष्टिचित्त में
उद्वेग की विजय-लेखा है। निउनिया के चरित्र का एक ही संदेश था—प्रीति की
गहरी सच्चाई सामान्य मापदण्डों से थहायी नहीं जा सकती, विद्या और सदाचार
के दर्प उसके आगे चूर-चूर हो जाते हैं। तभी लगा था कि इस व्योमकेश पांडित्य
पाषाण के भीतर अमृत का स्रोत है।"

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मिश्रजी ने निबन्ध
के विषय को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त भाषा और शैली का प्रयोग किया है।
तथापि इस सबंध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मिश्रजी के निबन्धों की भाषा

और शैली दोनों का प्रयोग नितान्त सहज एव स्वाभाविक रूप में हुआ है। कहीं भी यत्नसाध्यता अथवा कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते। निबन्धकार का एक मात्र लक्ष्य अपनी बात को मार्मिक और सजीव ढंग से व्यक्त करना होता है। और इस दृष्टि से मिश्रजी निस्सन्देह पूरी तरह सफल कहे जा सकते है।

मुकुट, मेखला और नूपुर : सारांश

प्रस्तुत निबन्ध में लेखक ने विंध्याचल के प्राकृतिक सौन्दर्य का निरूपण किया है। विंध्याचल के प्रति लेखक के मन में गहरा प्रेम रहा है क्योंकि उसका जन्म तो यहां हुआ ही था, उसका बालपन भी हिमालय के चरणों में बसी हुई इसी तराई की धरती में हुआ था। लेखक ने प्रस्तुत निबन्ध के नामकरण का रहस्य बताते हुए लिखा है कि यहां मुकुट का आशय हिमालय की दीप्ति से है, मेखला का प्रयोग विंध्याचल की ध्वनि के लिए और नूपुर का प्रयोग सागर के उन्मत्त विलास के लिए किया गया है।

लेखक को इस बात का दुःख है कि कई लोग किसी प्रान्त विशेष, जनपद विशेष के मोह में इतना अधिक डूब जाते हैं कि वे विशाल भारत की अनन्त प्राकृतिक सम्पदा, सांस्कृतिक धरोहर को भी पूरी तरह भुला देते हैं। यह ठीक है कि मनुष्य जिस प्रान्त में जन्म लेता है, जिस प्रान्त की मिट्टी में खेलकर बड़ा होता है, उस प्रान्त और उस मिट्टी के प्रति उसके मन में एक स्वाभाविक मोह होता है किन्तु लेखक के अनुसार मनुष्य को अपनी मातृभूमि को खण्ड रूप मे नहीं देखना चाहिए। हमारे यहां अनेक कवियों ने मातृभूमि की वन्दना की है किन्तु ऐसा करते समय उन्होंने उसकी अखण्डता को सदैव बनाए रखा है। लेखक ने भी अपनी मातृभूमि को खंड रूप में नहीं अपितु अखंड रूप में देखने का प्रयास किया है।

लेखक के विचार से मनुष्य की दृष्टि में व्यापकता होनी चाहिए। एकांगी दृष्टि के दुष्परिणामों का वर्णन करते हुए लेखक ने एक व्यक्तिगत अनुभव भी बताया है। एक बार रीवां जाते समय उनकी मुलाकात एक भोजपुरी मित्र से हो गई जो कि सीधी की बोली के बारे में पूछ बैठा। लेखक ने सहज रूप में बता दिया कि सीधी की बोली भोजपुरी है और अगले दिन ही उस मित्र ने 'विंध्यप्रदेश में भोजपुरी' नामक एक लेख प्रकाशित करा दिया। स्वभावतः इस कारण लेखक को अनेक मित्रों, साहित्यकारों की आलोचना का भागी होना पड़ा था। लेखक ने अपने जीवन का उद्देश्य व्यक्त करते हुए कहा है कि "मेरा पेशा केवल बिना शर्त के

बिना किसी प्रतिपादन की आशा के धरती का रस सब जगह सबसे लेना है और निर्विरोध भाव से लुटाना है, केवल लेना नहीं है।" लेखक के अनुसार हमारे यहां के अनेक विचारकों, साहित्यकारों, कलाकारों और यहां तक कि धर्माचार्यों ने अपने चिन्तन में ऐसी ही एकांगी दृष्टि का परिचय दिया है जिसका मूल कारण उनकी अपनी सीमाएं है। ऐसे लोगों ने अपने चिन्तन, अपनी दृष्टि को सीमाओं में बांध रखा है जिसके फलस्वरूप वे भारत के प्रत्येक साम्राज्य के उदय और अवसान को, प्रत्येक कला की उपलब्धियों को, साहित्य की बहुविध रचनाओं को इसी एकांगी दृष्टि से देख सके हैं। अपने प्रान्त, अपनी बोली, अपने लोगों से प्रीति होनी स्वाभाविक है, सर्वथा मानवोचित है। तथापि यह प्रीति ऐसी नहीं होनी चाहिए जो कि बड़ी प्रीति को जन्म न दे सके। बड़ी प्रीति भी ऐसी नहीं होनी चाहिए कि वह ऐसी प्रीति को जन्म न दे सके जिसमें प्रतिपादन की पहचान ही कठिन हो जाय। मनुष्यता की सबसे बड़ी पहचान ममता होती है, इसी ममता के सहारे मनुष्य बड़ी से बड़ी आपदाएं सहन करता हुआ भी आशा का दीप जलाए रखता है। यही ममता मनुष्य के भीतर जीने की ललक उत्पन्न करती है। यह सच है कि यदि लोगों के जीवन में से ममता-तत्त्व निकाल दिया जाए तो सामूहिक आत्महत्याएं होने लगें।

ममता की बात भी अधूरी है। जहां यह सच है कि मनुष्य की पहचान और जीवन-शक्ति ममता, वहां यह भी सच है कि मनुष्यता की कसौटी ममता का दान है। ममता के दान में कंजूसी नहीं होनी चाहिए। ममता का दान देने में जो कंजूसी करता है, वह निश्चय ही अभागा है, बौना है, समाज के लिए अभिशाप है। दान की महत्ता केवल देने में ही नहीं, बल्कि लिये हुए दान का समर्पण कर देने में छिपी होती है। इस प्रसंग में लेखक ने गोरखनाथ और मधुसूदन सरस्वती की एक ऐतिहासिक भेंट का उल्लेख किया है। सुन कथा के अनुसार गोरखनाथ ने अपनी सात सौ वर्षों की तपस्या को एक सिद्धिशिला में स्थित कर दिया और फिर वे उस सिद्धिशिला के लिए कोई सुपात्र व्यक्ति खोजने लगे। किसी तरह उन्होंने अपनी यह समूची साधना, तपस्या मधुसूदन सरस्वती को भेंट कर दी और आचार्य मधुसूदन ने गोरखनाथ की दी हुई वह सिद्धिशिला दान रूप में ले ली किन्तु अगले ही क्षण उसे गंगा की निर्मल धारा में प्रवाहित कर दिया क्योंकि उनके जीवन का सिद्धांत दान लेना और लिये हुए दान को भी समर्पित कर देना था। कथा के अनुसार जब गोरखनाथ ने यह देखा कि आचार्य मधुसूदन ने उनकी सात सौ वर्षों की तपस्या

और साधना से पुंजित सिद्धिशिला को दान में लेकर गंगा में विसर्जित कर दिया तो वे दुःखी या क्रोधित नहीं हुए बल्कि उन्होंने आचार्य मधुसूदन की इस समर्पण वृत्ति की हार्दिक प्रशंसा की। गोरखनाथ का उत्तर इस प्रकार था—"वत्स, इससे बढ़कर सुन्दर उपयोग तुम्हारे सिवाय कोई सोच ही नहीं सकता था। मैं स्वयं ऐसे उपयोग की कल्पना नहीं कर सकता था। तुम्हारा यह आदर्श न जाने कितने दूसरों को भी दाता और भिखारी बना देगा, मैं नहीं बता सकता।" लेखक के अनुसार यह कथा आज के युग में भी अपनी सार्थकता रखती है।

आज भारतवर्ष में प्रान्तीयता, जातिवाद आदि जैसे अनेक तत्त्व काम कर रहे हैं जो कि भारत को खण्डरूप में देखने की दोषपूर्ण दृष्टि के परिचायक हैं। ऐसा नहीं है कि इस प्रकार की विघटनकारी शक्तियां आज के युग में सर्वथा नई हैं। हमारा इतिहास साक्षी है कि मध्ययुग में भी इस प्रकार के विलगाव की शक्तियां विद्यमान थीं। छोटे-छोटे रजवाड़े अपनी-अपनी प्रभुता स्थापित करने के उद्देश्य से एक-दूसरे का गला काटने में लगे हुए थे। तथापि मध्ययुग और आधुनिक युग की परिस्थितियों में बहुत अन्तर है। उन दिनों इस प्रकार के विलगाव के मूल में कुछ गिने-चुने व्यक्ति अथवा परिवार थे जो कि अपने पराक्रम, सूझबूझ, युद्धकौशल के बल पर अपनी सत्ता स्थापित करने के इच्छुक थे। इसके विपरीत आज के युग में जो विघटनकारी शक्तियां दीख रही हैं, उनके मूल में जो लोग और लोगों के समूह हैं—वे सर्वथा निष्प्राण और निष्पन्द हैं।

लेखक के अनुसार विंध्याचल तो भारतवर्ष के हृदय की तरह है क्योंकि भौगोलिक और ऐतिहासिक दृष्टि से भी विंध्याचल की भूमि उत्तर और दक्षिण, पूर्व और पश्चिम का संधिस्थल है। यह भी सच है कि विंध्याचल की भूमि नई शक्ति और उत्साह के साथ उदीयमान हो रही है। तथापि लेखक की कामना यही है कि इस शक्ति और उत्साह का रस केवल विंध्याचल की भूमि तक ही नहीं अपितु समूचे भारत में व्याप्त हो जाए। विंध्याचल अपने विनय में सबसे बढ़कर है किन्तु इस विनय का आशय उसकी कायरता से नहीं लगाया जाना चाहिए। ऐसा करना विंध्याचल भूमि के प्रति अन्याय करने की तरह होगा। यदि हिमालय अपनी ऊंचाई में विशाल है, और सागर को अपनी गहराई का गर्व है तो विंध्याचल के विनय का विस्तार भी किसी तरह कम नहीं माना जा सकता।

मुकुट, मेखला और नूपुर : तात्त्विक विवेचन

'मुकुट, मेखला और नूपुर' नामक निबन्ध में लेखक ने विंध्याचल के प्रदेश की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि मनुष्य की जीवन दृष्टि एकांगी नहीं अपितु व्यापक होनी चाहिए। विंध्याचल के प्रति लेखक को बहुत मोह है क्योंकि उसका जन्म वहीं हुआ था और उसका बालपन भी वहीं बीता था। लेखक ने इस निबन्ध के माध्यम से देश की विघटनकारी शक्तियों पर भी तीखा व्यंग्य किया है। प्रस्तुत निबन्ध एक ललित-निबन्ध है। ललित-निबन्ध के तत्त्व इस प्रकार माने गये हैं—(क) रोचकता (ख) भावात्मकता (ग) सजीवता (घ) संगीतात्मकता अर्थात् काव्यगुण सम्पन्नता (ङ) वैयक्तिकता (च) एकसूत्रता (छ) हास्य एवं व्यंग्य का समावेश, तथा (ज) कलात्मकता। इन तत्त्वों के आधार पर प्रस्तुत निबन्ध का विवेचन निम्नानुसार किया जा सकता है—

(क) रोचकता : निबन्ध में रोचकता का निर्वाह आवश्यक होता है और ललित-निबन्ध में तो इसकी सार्थकता और भी अधिक हो जाती है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, लेखक ने जहां एक ओर अपने व्यक्तिगत प्रसंगों का उल्लेख किया है वहां गोरखनाथ और आचार्य मधुसूदन सरस्वती की ऐतिहासिक भेंट का वर्णन करके निबन्ध में रोचकता का समावेश कर दिया है।

(ख) भावात्मकता : भावात्मकता का आशय यही है कि निबन्ध में सिद्धान्तों और विचारों की बोझिलता नहीं होनी चाहिए। पाठक को ऐसा आभास होना चाहिए कि लेखक केवल अपने मत-विचारादि ही व्यक्त कर रहा है अपितु अपने हृदयस्थ भावों को भी वाणी दे रहा है। इस दृष्टि से प्रस्तुत निबन्ध की निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं जो कि लेखक के वैयक्तिक राग-विरागों को भी व्यक्त करती हैं "इस मातृभूमि की वन्दना में जिन कवियों ने गीत गाए हैं, उन सबने इसको खंड करके नहीं देखा, खण्ड को देखते हुए भी इसकी अखण्डता को उसमें पाने की कोशिश की, पर इस अखण्ड भूमि को अपने खण्ड से तिरोहित करने का प्रयत्न उन्होंने नहीं किया। उनकी पगडंडी पर मैं भी चलूंगा। विन्ध्य के अंचल में आया हूं तो हिमालय से दूर होकर नहीं, गंगा और कावेरी से दूर होकर नहीं बल्कि मन में इन सबकी एकाकारता लाते हुए विन्ध्य का दर्शन करने आया हूं। जिन लोगों को इससे अधिक पाने की आशा मुझसे होगी, उनसे मैं क्षमा चाहता हूं।"

(ग) सजीवता : निबन्ध में विषयगत सजीवता का निर्वाह भी होना आवश्यक

हैं। भाव यह है कि लेखक को अपने वर्ण्य-विषय, भावों, विचारों को सजीव रूप में प्रस्तुत करना चाहिए। लेखक प्रस्तुत निबन्ध के माध्यम से यही व्यक्त करना चाहता है कि हमारे विचारकों, साहित्यकारों की दृष्टि में एकांगिकता नहीं होनी चाहिए। हमारी जीवन-दृष्टि में ऐसी व्यापकता होनी चाहिए कि हम अपनी मातृभूमि के किसी खण्ड को भी देखें तो उसके भीतर मातृभूमि की अखण्डता को भी देखें। लेखक ने अपनी इस जीवन-दृष्टि को इस प्रकार व्यक्त किया है "जो एक विशेष प्रान्त के मोह में, एक विशेष जनपद के मोह में और एक विशेष कोने के मोह में इस विशाल देश की विशाल मोहब्बत को भूल जाता है, उसके ऊपर मुझे तरस आता है।"

(घ) **संगीतात्मकता अर्थात् काव्यगुणसम्पन्नता :** ललित-निबन्ध में माधुर्य और प्रसादात्मकता के निर्वाह से एक प्रकार की काव्यगुण सम्पन्नता का समावेश हो जाता है। निबन्ध में आत्मीयता और रागात्मकता से परिपूर्ण संगीतात्मकता के निर्वाह से संगीत जैसी तरलता आ जाती है। प्रस्तुत निबन्ध में भी इस प्रकार की तरलता के दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए निम्न पंक्तियां देखिए—"यह सही है कि साल-भर बाण और तुलसी की हियलगी विन्ध्यभूमि में रहकर भी इसके वन-निर्झरों में, इसके कला-केन्द्रों में, सोन, नर्मदा, गोदद, बनास, केन, बेतवा और दशार्ण की पृथ्वी के हृदय की नदियों के चट्टानों के साथ अठखेलियों में और अतीत के अधर खुले पृष्ठों सरीखे बोलते शिल्पों में रमा-घूमा हूं।"

(ङ) **वैयक्तिकता :** प्रत्येक निबन्ध लेखक के व्यक्तित्व की छाप लिये रहता है। प्रत्येक निबन्ध पर उसमें वर्णित भावों, विचारों की प्रस्तुति पर लेखक के व्यक्तित्व की छाप अनिवार्यतः रहती है। निबन्ध की शैली तो लेखक के व्यक्तित्व की असली पहचान होती ही है। शैली के सम्बन्ध में आगे 'कलात्मकता' शीर्षक के अधीन विचार किया जाएगा। प्रस्तुत संदर्भ में निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं जो कि लेखक के व्यक्तित्व की छाप लिये हुए हैं। "कुछ मित्रों ने एकदम आकुल होकर मुझे गहरा उलाहना दिया कि साहब आपकी मंशा क्या है? विन्ध्य प्रदेश के सीधी जिले को आप लेना चाहते हैं क्या? मैंने सीधा-सा जवाब दिया कि न मुझे लेना, न देना है क्योंकि इन चीजों के लेने-देने का सौदा करने का भार जिस पेशे के लोगों पर है, सौभाग्यवश वह मेरा पेशा ही नहीं है। मेरा पेशा केवल बिना शर्त के, बिना किसी प्रतिदान की आशा के धरती का रस सब जगह सबसे लेना है

और निर्विशष भाव से लुटाना है, केवल लेना नहीं है।"

(च) एकसूत्रता : निबन्ध में विषयगत एकरूपात्मकता का निर्वाह भी आवश्यक होता है। यूं तो लेखक को अपने विचारों-भावों के विवेचन में विभिन्न प्रकार की घटनाओं, उद्धरणों, आदि का उपयोग करना होता है फिर भी निबन्ध के आरम्भ से लेकर अन्त तक एकरूपात्मकता बनी रहती है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है लेखक ने विंध्य-भूमि की महत्ता का वर्णन किया है किन्तु उसके साथ-साथ यह भी कहा है कि विन्ध्य-भूमि-की महत्ता समूची भारतभूमि के परिप्रेक्ष्य में देखी और समझी जानी चाहिए। लेखक की जीवन-दृष्टि एकांगी नहीं रही है। उसने विंध्यभूमि की प्रशंसा तो अवश्य की है किन्तु खण्ड रूप में नहीं अपितु ऐसे ढंग से की है कि उसकी अखण्डता को उसमें पाने का प्रयास किया है। लेखक ने निबन्ध में आदि से लेकर अन्त तक सूत्र-छिन्नता नहीं आने दी है। निबंध में इस एकसूत्रता की परिचायक निम्न पंक्तियां देखिए—"विंध्य की विशेषताएं भारत का केवल अलंकार बनने के लिए नहीं बल्कि उसका हृदय बनने के लिए मुझे अधिक उपयुक्त लगीं क्योंकि आखिर समस्त शरीर के रक्त का आकर्षण-विकर्षण ही तो हृदय का काम है। भौगोलिक स्थिति से और ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रदेश उत्तर और दक्षिण, पूर्व और पश्चिम भारत का संधिस्थल रहा है। आज एक सुगठित और चेतन इकाई के रूप में यह प्रदेश नई शक्ति लेकर उठ रहा है, तो केवल यही कामना है कि इस शक्ति का विनियोग गलत रास्ते में न हो। मैं जो कुछ देख-सुन सका हूं उससे मुझे बस यही लालसा हुई है कि वसुमती के सोये हुए ये शक्ति-स्रोत समस्त भूमण्डल में रस फैला सकें।"

(छ) हास्य एवं व्यंग्य का समावेश : निबन्ध की अन्तर्वस्तु को प्रभावी और सरस बनाने के उद्देश्य से कभी-कभी हास्य एव व्यग्य का प्रयोग भी किया जाता है। इस प्रकार के प्रयोग से निबन्ध की रोचकता बढ़ जाती है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, लेखक ने हास्य एवं व्यंग्य का आश्रय प्राय: नहीं के बराबर लिया है। हास्य का तो एक भी प्रसंग नहीं है, हां, व्यंग्य के छिटपुट प्रसंग संभवतः मिल सकें। उदाहरण के लिए व्यंग्य की एक-दो बानगियां देखिए—"क्या एक-एक दल नोचकर तश्तरी में बिछा देने से ही उसकी सत्ता प्रमाणित की जा सकती है?—शक्तिशाली की विनय कायरता नहीं होती और हिमालय अपनी ऊंचाई में बड़ा है, सागर अपनी गहराई में बड़ा है तो विन्ध्य अपने विनय के विस्तार में बड़ा है, ऐसा

विस्तार जो संस्कृति के सभी कीर्ति-स्तम्भों को व्याप्त करके फैला हो।"

(ज) कलात्मकता : कलात्मकता का आशय निबन्ध की वाह्य साज-सज्जा से होता है। निबन्ध के बाह्य कलेवर को सजाने-संवारने में भाषा-शैली का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। यही नहीं, निबन्ध की शैली लेखक के व्यक्तित्व की परिचायक होती है। विद्यानिवास मिश्रजी के निबन्धों की भाषा-शैली उनके अपने अध्ययन की परिचायक है। यही कारण है कि उनके निबन्धों की भाषा तत्सम प्रधान साहित्यिक भाषा है। तथापि उसमें संस्कृत की दुरूहता अथवा समासात्मकता कहीं नहीं है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत निम्न निबन्ध की पंक्तियां देखिए, "जो एक विशेष प्रान्त के मोह में, एक विशेष जनपद के मोह में और विशेष कोने के मोह में इस विशाल देश की विशाल मोहकता को भूल जाता है, उसके ऊपर मुझे तरस आता है। मुझे केवल इतना समझ में आ सकता है कि जिस मां का दूध पिया हो, उसका ऋण कुछ विशेष होता है, पर उस ऋण का शोध भी मेरी समझ में सबसे बड़ा यही है कि वैसे दूध वाली जितनी माताएं हों सबकी वत्सलता की पात्रता अपने में लायी जाय क्योंकि मां एक की नहीं, सबकी है और वह अनेक होते हुए भी एक है।" मिश्रजी की भाषा की अन्यतम विशेषता यह है कि उसमें साहित्यिक प्रांजलता होते हुए भी दुरूहता कहीं नहीं है। विचार बोझिलता भी कहीं नहीं है। लेखक ने प्रसादात्मक शैली का प्रयोग करके निबन्ध में रसात्मकता का भी संचार किया है। प्रस्तुत निबन्ध की भाषा में तरल गहन अनुभूति और भाव-प्रवणता आद्योपान्त देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"मनुष्य की पहचान निःसन्देह ममता है, पर साथ ही मनुष्यता का मापदण्ड भी उस ममता का दान है। उस दान में जिसने कंजूसी की है, वह बौना बनकर रह गया है और दान देना ही नहीं, दान लेना भी और इसलिए दान को भी समर्पण कर देना उसकी महत्ता है।"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत निबन्ध में ललित-निबन्ध की सभी विशेषताओं का निर्वाह हुआ है। निबन्ध की भाषा-शैली लेखक के व्यक्तित्व की पहचान बन गई है। विषय से अधिक आकर्षण उसकी प्रस्तुति का है। लेखक की वर्णन शैली का संस्पर्श पाकर वर्ण्य विषय बहुत ही सजीव बन पड़ा है। विंध्य भूमि का इतना मनोहारी वर्णन, हिन्दी में अन्यत्र सुलभ नहीं है।

महत्वपूर्ण स्थलों की सप्रसंग व्याख्या

१. "विन्ध्य के अंचल में मुझे गये बीस संवत्सर से कुछ अधिक हो रहा है। मैं रुककर पीछे देखता हूं तो सबसे पहले मेरा मन हिमालय के चरणों में बिछी हुई धानी तराई की स्निग्ध स्मृतियों में भीग उठता है। मेरा जन्म उसी तराई की धरती में हुआ है और बचपन भी उसी के रस से सिंचित होकर के पला है। यह सही है कि साल-भर बाण और तुलसी की हियलगी विंध्यभूमि में रहकर भी इसके बन-निर्झरों में, इसके कला केन्द्रों में, सोन, नर्मदा, गोपद, बनास, केन, बेतवा और दशार्ण की पृथ्वी के हृदय से नदियों की चट्टानों के साथ अठखेलियां और अतीत के अधखुलें पृष्ठों सरीखे बोलते शिल्पों में रमा-घूमा हूं। मन इनमें घुलकर किसी से एक न हो सका। इसका कारण यह नहीं है कि मैं अपने को प्रवासी अनुभव करता हूं बल्कि ठीक विपरीत मुझे उस अतीत के दुलार की धरती का इसमें पूरक दान मिलता है।

(पृष्ठ १)

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तिया श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध संग्रह में 'मुकुट, मेखला और नूपुर' नामक निवन्ध से उद्धृत की गई हैं जिनमें लेखक अपनी जन्मभूमि अर्थात् विंध्यभूमि के प्रति अपने आकर्षण को व्यक्त कर रहा है।

व्याख्या : लेखक कह रहा है कि 'मुझे अपनी जन्मभूमि अर्थात् विंध्यभूमि की यात्रा किए हुए बीस वर्षों से अधिक का समय हो गया है। आज भी जब कभी मुझे विंध्यभूमि की याद आती है तो मैं हिमालय पर्वत की तराई में झूमते हुए धान के खेतों की सुखद स्मृतियों में खो जाता हूं। धान के झूमते हुए खेतों के प्रति मेरे मन में गहरी आसक्ति आज भी बनी हुई है। विंध्यभूमि के प्रति मेरे इस आकर्षण का कारण कुछ भी हो सकता है। हां, मेरा जन्म इसी तराई में हुआ था, मेरा बालपन भी यहीं बीता है। विंध्यभूमि की प्रशंसा करने वाले भारतीय कवियों में संस्कृत के कवि बाण और हिन्दी के कवि तुलसी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन दोनों कवियों ने अपने-अपने ढंग से विंध्यभूमि की प्राकृतिक सुषमा, सांस्कृतिक वैभव का सजीव वर्णन किया है। विंध्यभूमि के बन-निर्झरों, कला-केन्द्रों और यहां की अनेक नदियों की कलकल करती ध्वनि ने सहृदय कवियों का ही नहीं सभी का मन मोहा है। मैं तो पूरे एक वर्ष तक इस विंध्यभूमि में रहा हूं और इसके कण-कण में

छिपे हुए सौन्दर्य को देख सका हूं। बचपन में विंध्यभूमि के बन-निर्झरों, नदियों में बिताए हुए सुखद क्षणों की स्मृतियां आज भी मुझे बुरी तरह साल रही हैं। मेरा मन धान के लहलहाते खेतों से घिरी हुई इस सुरम्य भूमि और इसकी प्राकृतिक सम्पदा में पूरी तरह रमा रहा है। तथापि मेरी दृष्टि इस विंध्यभूमि तक ही सिमट कर नहीं रह गई। इसका कारण यह है कि इस प्रदेश के लिए मैं अपने आप को अजनबी मानता हूं। सच तो यह है कि मैं विंध्यभूमि को अपने अतीत की स्मृतियों का पूरक मानता हूं। मैं विंध्यभूमि को अपनी मातृभूमि का ही एक अंग मानता हूं। भारत से कटे हुए विंध्यभूप्रदश को तो मैं कभी भी नहीं देख सका हूं।

२. "जब जब मैंने जेठ में धांय-धांय जलती छोटी पहाड़ियों की चोटियों पर से खड़े होकर के तृण विहीन और धूसर भूमि का फैलाव निहारा है, तब-तब मुझे हिमशैलमालाओं का स्वर्णरंजित अनन्त सौभाग्य और बैसाख-जेठ में गलते हुए हिमपिण्डों के उमड़ाव से लहराते हुए साठी (षष्ठि) धान के झूमते खेत भी नजर आए हैं। मुझे लगा है कि रूप के अनन्त सौभाग्य को विरह की साधना मानो यहीं मिली है और मुझे अज्ञेय की अमर पंक्तियां याद आयी हैं 'विरह की पीड़ा न हो तो प्रेम क्या जीता रहेगा'।"

(पृ० १)

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियां श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध संग्रह में संकलित 'मुकुट, मेखला और नूपुर' नामक निबन्ध से उद्धृत की गई हैं जिनमें लेखक ने विंध्य के अंचल में लहराते हुए धान के खेतों का सौन्दर्य-वर्णन किया है।

व्याख्या : विंध्यभूमि में लहराते हुए धान के खेतों के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लेखक कह रहा है कि जेठ के महीने में मैंने कई बार विंध्याचल की छोटी-छोटी पहाड़ियों पर जाकर नीचे की ओर देखा है। जेठ के महीने में ये पहाड़ियां स्वभावतः बुरी तरह तपती रहती हैं। इन छोटी-छोटी पहाड़ियों के ऊपर चढ़कर जब कभी मैंने नीचे की ओर देखा है तो मुझे दूर-दूर तक बंजर धरती का फैलाव दीख पड़ा है। उस समय मुझे धान के खेत भी दिखाई पड़े हैं जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो हिमालय पर्वत की पहाड़ियों का स्वर्णिम सौन्दर्य और बैसाख-जेठ के तपते हुए महीनों में बर्फ के बड़े-बड़े टुकड़े गल रहे हो। धान के इन खेतों को

देखकर ऐसी अनुभूति होती है कि विंध्याचल के इस अपरिमित सौन्दर्य को विरह की साधना के रूप में धान के यही खेत मिले हों। कहने का भाव यह है कि विंध्यभूमि को जहां एक ओर प्रकृति का अनन्त सौन्दर्य मिला है वहां उसे विरह की पीड़ा भी भोगनी पड़ी है। धान के ये दूर-दूर तक फैले खेत विरह की इसी साधना के परिचायक हैं।

३. मुकुट, मेखला और नूपुर जैसे इन तीन शृंगारों के प्रतिरूप से हिमालय, विन्ध्य और सागर भारत की अनूठी समंजसता के विधायक हों, मुकुट की दीप्ति, मेखला की ध्वनि और नूपुर का उन्मद विलास परस्पर पूरक और उपकारक हैं और विलग नहीं।

(पृ० २)

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियां श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-सग्रंह में संकलित 'मुकुट, मेखला और नूपुर' नामक निबन्ध से उद्धृत की गई हैं जिनमें लेखक ने भारत को अखण्ड रूप से देखने का प्रयास किया है।

व्याख्या : अपनी मातृभूमि को अखण्ड रूप में देखने का प्रयास करते हुए लेखक कह रहा है कि 'भारतवर्ष पर्वतों, नदियों और सागरों का देश है। हिमालय पर्वत मानो भारत का मुकुट है जिसकी शोभा देखते ही बनती है। इसी प्रकार विंध्यभूमि मेखला की तरह है और अनन्त अथाह सागर नूपुर की भांति है। तथापि इन सबका सौन्दर्य भारत की अखण्डता में सिमट आया है। हिमालय पर्वत भारत के मुकुट की तरह है किन्तु नूपुरों का मधुर स्वर भी मुकुट और मेखला के सौन्दर्य की वृद्धि करता है। भाव यह है कि बाह्यतः हिमालय, विंध्यभूमि और सागर अलग-अलग दीखते हैं, प्रत्येक का अस्तित्व अलग-अलग दीखता है किन्तु सच तो यह है कि ये तीनों एक-दूसरे के पूरक और उपकारक हैं। तीनों मिलकर भारतवर्ष की सौन्दर्य-सम्पदा का निर्माण करते हैं। भारत का सौन्दर्य वस्तुतः तभी देखा जा सकता है, जबकि इन तीनों को एकाकार रूप में देखा जाय।

विशेष—(क) प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने भारत के सौन्दर्य को अखण्ड रूप में देखने का प्रयास किया है। उसके विचार से यूं देश के कोने-कोने में अपार सौन्दर्य छिपा हुआ है किन्तु उस सौन्दर्य का वास्तविक अनुभव तभी किया जा सकता है जबकि उसे अखण्ड रूप में देखा जाय।

(ख) प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से लेखक ने मुकुट, मेखला और नूपुर शब्दों का निहितार्थ स्पष्ट किया है जिसके अनुसार मुकुट हिमालय का, मेखला विंध्याचल और नूपुर सागर का परिचायक है।

४. "जो एक विशेष प्रान्त के मोह में, एक विशेष जनपद के मोह में और एक विशेष कोने के मोह में इस विशाल देश की, इस विशाल मोहकता को भूल जाता है, उसके ऊपर मुझे तरस आता है। मुझे केवल इतना समझ में आ सकता है कि जिस मां का दूध पिया हो, उसका ऋण कुछ विशेष होता है पर उस ऋण का शोध भी मेरी समझ में सबसे बड़ा यही है कि वैसी दूध वाली जितनी माताएं हों, सबकी वत्सलता की पात्रता अपने में लायी जाय, क्योंकि मां एक की नहीं, सबकी है और वह अनेक होते हुए भी एक है।

(पृष्ठ २)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मुकुट, मेखला और नूपुर' नामक निबन्ध से लिया गया है जिसमें लेखक एकांगी दृष्टि का विवेचन कर रहा है। लेखक के अनुसार मनुष्य की यह एकांगी दृष्टि जीवन को उसकी समग्रता में देखने में बाधक रहती है।

व्याख्या : लेखक कह रहा है कि "जो व्यक्ति देश के किसी एक प्रान्त अथवा जनपद के प्रति समर्पित हो जाता है, वह देश को उसके समग्र, रूप में देखने में असमर्थ रहता है। स्वभावतः उसकी दृष्टि देश के किसी एक ही जनपद के लोगों, वहां की संस्कृति में ही केन्द्रित रह जाती है और बाकी सारा देश और देश के लोग उसकी दृष्टि से सर्वथा अछूते रह जाते हैं। ऐसी एकांगी दृष्टि रखने वाले लोग निश्चय ही दया के पात्र हैं क्योंकि देश का एक बहुत बड़ा भाग उनसे अजाना रह जाता है। यह तो ठीक है कि मनुष्य जिस गली, मोहल्ले, शहर में जन्म लेता है, वहां के कण-कण से उसका मोह होता है किन्तु यही तो पर्याप्त नहीं है। जिस मां ने हमें जन्म दिया है, दूध पिलाकर बड़ा किया है, उसके प्रति तो हमारा ऋण होता ही है किन्तु मां तो मां होती है, चाहे वह किसी की भी हो और मां होने के कारण आदर की पात्र होती है। मातृभूमि के प्रसंग में भी यही बात चरितार्थ होती है। हमें देश के किसी जनपद विशेष से मोह हो सकता है किन्तु हमारी दृष्टि में मातृभूमि की समग्रता सिमट आनी चाहिए।"

विशेष : (क) लेखक ने मातृभूमि के प्रति एकांगी दृष्टि रखने वाले अधकचरे

लोगों के भीतर देश की अखण्डता का बोध जागृत करने का प्रयास किया है।

(ख) 'मां' की उपमा का बहुत ही सार्थक प्रयोग किया गया है।

(ग) भाषा की प्रवाहमयता और भावानुकूलता विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

५. "इस मातृभूमि की वन्दना में जिन कवियों ने गीत गाए हैं, उन सबने इसको खण्ड करके नहीं देखा, खण्ड को देखते हुए भी इसकी अखण्डता को उसमें पाने की कोशिश की, पर इस अखण्ड भूमि को अपने खण्ड से तिरोहित करने का प्रयत्न उन्होंने नहीं किया। उनकी पगडण्डी पर मैं भी चलूंगा। विंध्य के अंचल में आया हूं तो हिमालय से दूर होकर नहीं, सागर से दूर होकर नहीं, गंगा और कावेरी से दूर होकर नहीं, बल्कि मन में इन सबकी एकाकारता लाते हुए विंध्य का दर्शन करने आया हूं। जिन लोगों को इससे अधिक पाने की मुझसे आशा होगी, उनसे मैं क्षमा चाहता हूं।"

(पृष्ठ २)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र के 'मेरे राम का मुकुट भींग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह में संकलित 'मुकुट, मेखला और नूपुर' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक यह कहने का प्रयास कर रहा है कि मनुष्य को अपनी मातृभूमि के प्रति एक समग्र दृष्टि रखनी चाहिए। देश को खण्डित रूप में देखना, एकांगी दृष्टि का स्वाभाविक परिणाम होता है।

व्याख्या : लेखक अपने मन्तव्य को स्पष्ट करते हुए कह रहा है कि "हमारे यहां के अनेक कवियों ने मातृभूमि की वन्दना की है किन्तु ऐसा करते समय उन्होंने देश को समग्र रूप में देखा है, खण्ड रूप में नहीं। यदि उन्होंने मातृभूमि को खण्ड रूप में भी देखा है तो उस खण्ड में मातृभूमि की अखण्डता के दर्शन किए हैं। इन कवियों ने मातृभूमि की अखण्डता को सदैव बनाए रखा है। सच तो यह है कि उन्होंने मातृभूमि को उसकी पूरी समग्रता, अखण्डता में देखा है। एक लेखक के रूप में भी उन्हीं कवियों की परम्पराओं का अनुसरण करना चाहता हूं। मैं भी उन कवियों की भांति अपनी मातृभूमि को खण्ड रूप में नहीं अपितु समग्र रूप में देखने का इच्छुक हूं। मेरी जन्मभूमि विंध्य में स्थित है किन्तु मैं विंध्य-भूमि को देश के अन्य भागों से कटे हुए रूप में नहीं देखना चाहता। मैं जब विंध्यभूमि के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखता हूं तो हिमालय का सौन्दर्य, अथाह सागर की गरिमा

गंगा और कावेरी नदियों की जलधाराएं मेरे अन्तर्मन में सहज ही सिमट आती हैं। भाव यह है कि मैं विंध्यभूमि को भी भारत की अखण्डता में ही देखता हूं अर्थात् उसे भारत के एक ऐसे खण्ड के रूप में देखता हूं जिसमें भारत की अखण्डता की अनुभूति मिल सके। मेरे पाठकों को मुझसे इससे अधिक की आशा नहीं करना चाहिए।

६. "मनुष्य की पहचान निस्सन्देह ममता है, पर साथ ही मनुष्यता का मापदण्ड भी उस ममता का दान है। उस दान में जिसने कंजूसी की है, वह बौना बन कर रह गया है और दान देना ही नहीं, दान लेना भी और इसलिए दान का भी समर्पण कर देना उसकी महत्ता है।

(पृष्ठ ३)

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियां श्री विद्यानिवास मिश्र के 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह में संकलित 'मुकुट, मेखला और नूपुर' नामक निबन्ध से उद्धृत की गई हैं जिनमें लेखक ने ममता की प्रवृत्ति का विश्लेषण किया है। लेखक के अनुसार मनुष्य के भीतर ममता की प्रवृत्ति जन्मजात होती है किन्तु उसकी सार्थकता इसी बात में है कि ममता जितनी भी मिले, उतना ही उसका दान किया जाय।

व्याख्या : लेखक कह रहा है कि "मैं यह स्वीकार करता हूं कि ममता मनुष्य की सहज प्रवृत्ति होती है, इसी ममता के बल पर संसार में सभी व्यक्ति एक-दूसरे के साथ बंधे होते हैं। मां, बाप, बेटा, बेटी और इसी प्रकार के बहुविध सम्बन्धों का अंकुर ममता के प्रांगण में ही फूटता है। तथापि इसी बात का एक अन्य पक्ष भी है। केवल यही सच नहीं है कि मनुष्य के इस गुण की सार्थकता ममता का दान देने में है। मनुष्य को जितनी ममता मिलती है, उससे अधिक ममता का उसे दान करना चाहिए। इस सम्बन्ध में मनुष्य को किसी प्रकार की कंजूसी नहीं करनी चाहिए। ममता की प्राप्ति से अधिक महत्ता उसके दान करने में छिपी होती है। यदि हम ममता का दान नहीं करते तो यह हमारी स्वार्थपरता ही कही जा सकती है जो कि हमें दूसरों की तुलना में छोटा, बौना बना देती है। हमारी मनुष्यता का एकमात्र मापदण्ड यही है कि हमारे भाग्य में जितनी ममता हो, हम उसका दान कर दें, दूसरों को दे दें।

विशेष : (क) लेखक ने मनुष्य की ममता वृत्ति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

प्रस्तुत किया है।

(ख) लेखक का उक्त कथन पुनः इसी बात का परिचायक है कि मनुष्य को अपनी मातृभूमि के प्रति सर्वांगीण दृष्टि रखनी चाहिए। किसी प्रदेश, प्रान्त अथवा जनपद विशेष के प्रति उसके भीतर ममता हो सकती है किन्तु उसकी सार्थकता तभी है जबकि वह ममता और आगे प्रसारित हो सके।

७. आज भारत के विभिन्न राज्यों के बीच एक-दूसरे से बिछुड़ने की, एक-दूसरे से अलग रहकर मनोराज्य खड़ा करने की कल्पनाएं बहुत जोर मार रही हैं और यह यहां के इतिहास के लिए नई चीज नहीं है। मध्य युग का इतिहास भी इसी करुण कथा से परिपूरित है। हां, अन्तर इतना अवश्य है और वह अन्तर और भी शोचनीय है कि मध्य युग में विलगाव के केन्द्र व्यक्ति थे और इने-गिने व्यक्तियों की और उनके परिवारों की आन की रक्षा में देश के विभिन्न अंग आपस में कट मरे, पर आज ऐसे विलगाव की भावना व्यक्ति-समूहों में उठायी जा रही है, क्योंकि ये समूह निस्पन्द हैं।

(पृष्ठ ४)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह में संकलित 'मुकुट, मेखला और नूपुर' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने देश में सक्रिय हो रहे विघटनकारी तत्त्वों की ओर इंगित किया है।

व्याख्या : देश के भीतर सक्रिय हो रहे विघटनकारी तत्त्वों का उल्लेख करते हुए लेखक कह रहा है कि "आज भारत में विघटकारी तत्त्व बहुत सक्रिय हो रहे हैं। विभिन्न राज्यों के बीच एक-दूसरे से अलग हो जाने की प्रवृत्ति बहुत सक्रिय हो उठी है। धर्म, प्रान्त, भाषा जैसे विभिन्न आधारों पर लोगों के बीच विलगाव की स्थिति उत्पन्न होती जा रही है। तथापि भारतवर्ष के लिए इस प्रकार की विघटनकारी प्रवृत्तियां अपने आपमें नई नहीं है। मध्य युग में भी ऐसा ही हुआ करता था। उन दिनों भी राजे-महाराजे अपने-अपने साम्राज्य स्थापित करने में लगे रहते थे। प्रायः पारस्परिक युद्ध और संघर्ष चलते रहते थे और देश को छोटे-छोटे खण्डों में विभाजित करने की प्रवृत्ति बहुत बलवती हो गई थी। तथापि उन दिनों के राजा-महाराजा अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए अथवा अपने पारिवारिक गौरव को बढ़ाने के लिए एक-दूसरे से जूझते थे। उन दिनों जो विलगाव

दीखता था, उसका आधार व्यक्ति होते थे। इसके विपरीत आजकल जो विलगाव उत्पन्न किया जा रहा है उसके मूल में व्यक्ति नहीं अपितु भाषा, धर्म, जाति और सम्प्रदाय आदि हैं। आज के संघर्षों में जिन व्यक्तियों के बीच विलगाव उत्पन्न किया जा रहा है, वे निर्जीव हैं।

८. "विंध्य की विशेषताएं भारत का केवल अलंकार बनने के लिए नहीं बल्कि उसका हृदय बनने के लिए मुझे अधिक उपयुक्त लगीं क्योंकि आखिर समस्त शरीर के रक्त का आकर्षण-विकर्षण ही तो हृदय का काम है। भौगोलिक स्थिति से और ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह प्रदेश उत्तर और दक्षिण, पूर्व और पश्चिम भारत का संधिस्थल रहा है। आज एक सुगठित और चेतन इकाई के रूप में यह प्रदेश नई शक्ति लेकर उठ रहा है, तो केवल यही कामना है कि इस शक्ति का विनियोग गलत रास्ते में न हो।"

(पृष्ठ ४-५)

प्रसग : प्रस्तुत पंक्तियां श्री विद्यानिवास मिश्र के 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह में संकलित, 'मुकुट मेखला और नूपुर' नामक निबन्ध से उद्धृत की गई हैं जिनमें लेखक विंध्यभूमि की महत्ता का वर्णन कर रहा है।

व्याख्या : विंध्यभूमि की महत्ता का वर्णन करते हुए लेखक कह रहा है कि 'मेरी दृष्टि में समूचे भारत में विंध्य का स्थान केवल अलंकार जैसा नहीं अपितु उसके हृदय जैसा है। भाव यह है कि विंध्यभूमि केवल प्राकृतिक सौन्दर्य की ही भूमि नहीं है अपितु उसका भौगोलिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। भौगोलिक दृष्टि से विंध्यभूमि भारत के उत्तर और दक्षिण, पूर्व और पश्चिम के मिलन-स्थल पर स्थित है और इस कारण उसका एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। जहां एक ओर विंध्यभूमि भारत के उत्तर और दक्षिण, पूर्व और पश्चिम से प्रभावित होती है, वहां वह सम्पूर्ण देश को भी प्रभावित करती है। विंध्यभूमि की अन्यतम विशेषता उसकी विनयशीलता है। आज समूची विंध्यभूमि और यहां के लोग प्रगति के नए पथ पर अग्रसर हो रहे हैं, एक नई चेतना लेकर आगे बढ़ रहे हैं। मुझे यह देखकर अत्यन्त हर्ष की अनुभूति हो रही है कि विंध्यभूमि के निवासी एक सुसंगठित रूप में आगे बढ़ रहे हैं। उनके भीतर एक नयी आशा, नया उत्साह दीख पड़ रहा है। तथापि मुझे यह आशंका भी बराबर बनी हुई है कि कहीं विंध्यभूमि के निवासियों की यह शक्ति किसी गलत दिशा में न बढ़ जाए। इसका विनियोग सम्यक्

दिशा में होना आवश्यक है। मेरी कामना यही है कि विंध्यवासी जिस शक्ति, उत्साह और आशा को लिये हुए आगे बढ़ रहे हैं, वह उनके साथ बराबर बनी रहे। वस्तुतः विंध्यभूमि भारत वर्ष का हृदय है।

६. "शक्तिशाली की विनय कायरता नहीं होती और हिमालय अपनी ऊंचाई में बड़ा है, सागर अपनी गहराई में बड़ा है तो विंध्य अपने विनय के विस्तार में बड़ा है। ऐसा विस्तार जो संस्कृति के सभी कीर्ति-स्तम्भों को व्याप्त करके फैला हो। मेखला की कड़ियों में उलझने में जो आस्वाद मुझे मिला है, वह मुकुट के दर्शन से प्राप्त चकाचौंध से या नूपुर के लुभावने आकर्षण से कम है या बेशी है, यह तुलना की ही नहीं जा सकती क्योंकि वह एकदम अलग है, जैसे दाख, मिश्री और मधु की मिठास एकदम अलग होती है।

(पृष्ठ ५)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह में संकलित 'मुकुट, मेखला और नूपुर' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने विंध्यभूमि की प्रशंसा की है।

व्याख्या : विंध्यभूमि की प्रशंसा करते हुए लेखक कह रहा है कि 'विंध्यभूमि की विशेषता उसकी विनयशीलता है। उसकी यह विनयशीलता उसकी कायरता की नहीं अपितु शक्तिमत्ता की परिचायक है। विंध्यभूमि अपने विनय के विस्तार में बहुत महान है। यह ठीक है कि हिमालय अपनी ऊंचाई से महान है किन्तु सागर भी तो अपनी गहराई में समान रूप से महान है और इस कारण प्रत्येक अपने-अपने क्षेत्र में महान हैं। विंध्यभूमि अथवा हिमालय अथवा सागर सभी का अपना-अपना सौन्दर्य और आकर्षण है और उन सबकी पारस्परिक तुलना करना अन्याय होगा। यद्यपि किशमिश, मिश्री और शहद—तीनों ही मीठे होते हैं किन्तु फिर भी तीनों का मिठास एक-दूसरे से भिन्न होता है। ठीक यही स्थिति विंध्यभूमि की भी है। उसका जो आकर्षण है वह हिमालय की ऊंचाई अथवा सागर की गहराई से कम या अधिक नहीं है किन्तु भिन्न अवश्य है।

विशेष : प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने मातृभूमि के प्रति समग्र दृष्टि रखने की सार्थकता सिद्ध की है। लेखक का दृष्टिकोण निबन्ध के आदि से लेकर अन्त तक यही रहा है कि मातृभूमि को खण्ड-खण्ड करके नहीं अपितु समग्र रूप में सराहा

जाना चाहिए।

अमरकण्टक की सालती स्मृति : सारांश

प्रस्तुत निब्रन्ध में लेखक ने विध्याचल मे स्थित अमरकंटक की यात्रा का वर्णन किया है। अमरकंटक विंध्यश्रेणियों में वहां स्थित है जहां से नर्मदा नदी का उद्‌गम हुआ है। लेखक ने इस सुरम्य स्थल के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था और इस कारण उसने एक पूरी मडण्ली के साथ वहां की यात्रा करने की योजना बनाई। लेखक और उसकी मण्डली के सदस्यों की यह यात्रा अनेक दृष्टियों से स्मरणीय रही है। लेखक और उसके सहयात्रियों ने यह ऐतिहासिक यात्रा कार से की। यह सारा दल शहडौल से सवेरे ही रवाना हो गया और प्रात: आठ बजे जुहिला नदी के तट पर स्थित राजेन्द्रग्राम में पहुंच गया। लेखक और सहयात्रियों ने कुछ समय जुहिला नदी के किनारे उठे हुए बड़े-बड़े पत्थरों पर बैठकर बिताया। जुहिला नदी के चारों ओर विंध्याचल की पहाड़ियां घिरी हुई थीं। नदी का मीठा और निर्मल जल, बालू के प्रत्येक कण में छिपा हुआ सौन्दर्य किसी भी सहृदय को बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था। इस नदी-तट पर कुछ विश्राम करने के बाद यात्रियों का यह दल नर्मदा के किनारे पहुंच गया। वहां इन्होंने डाक बंगले में ठहरने की व्यवस्था की। स्वभावत: वहां विश्राम की समुचित व्यवस्था हो गई किन्तु दुर्भाग्य-वश पीने का पानी बहुत देर बाद प्राप्त हो सका। यहीं इन लोगों ने थोड़ा जल-पान किया और शाम के समय यह सारा-यात्री दल नर्मदा-कुण्ड जा पहुंचा। कहा जाता है कि नर्मदा नदी का विकास इसी कुण्ड से हुआ है। कुण्ड के चारों ओर अनेक मन्दिर बने हुए हैं जिनमें पातालेश्वर और शिव मन्दिर विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। पातालेश्वर मन्दिर का निर्माण कलचुरि राजा कर्णदेव के हाथों हुआ था और इस कारण इसमें खजुराहों के मन्दिरों की स्थापत्यकला के दर्शन होते हैं। तथापि मंदिर वस्तुतः उतने सुन्दर नहीं हैं जितने कि चित्रों में प्रतीत होते हैं।

इसके बाद यात्रा-दल ने आगे की योजना पर विचार किया किन्तु इसी क्रम में रात हो गई। फलत: यात्रा-दल पुन: डाक बंगले पर लौट आया और रात वहीं काटी। यात्रा-दल तो रात को सो गया किन्तु लेखक चुपके से उठकर वन प्रदेश की ओर चल पड़ा और उसके साथ ही उसके मस्तिष्क में अनेक प्रकार के विचार कौंध उठे। वनप्रदेश में जाते समय उसे अनेक स्मृतियों ने जकड़ लिया। उसे जहां एक ओर कालिदास के 'मेघदूत' का स्मरण हो आया वहां सोन और

नर्मदा के विवाह का पौराणिक प्रसंग भी याद आ गया। लेखक बहुत रात तक इसी प्रकार की स्ममृतियों और विचारों में खोया रहा और भोर हो गया। लेखक के दल के अन्य यात्री भी अब तक जाग चुके थे। यात्रा फिर आरम्भ हुई और इसका अगला पड़ाव नर्मदा का पहला प्रपात कपिलधारा था। कपिलधारा नर्मदा के कुण्ड से लगभग सौ फुट की ऊंचाई पर स्थित थी। कपिलधारा के निकट ही दुग्धधारा नाम का एक अन्य प्रपात भी है। यात्रादल के सदस्यों ने पूरे मन से इन दोनों प्रपातों की जलधारा में स्नान किया। इस दल में दो-तीन महिलाएं भी थीं जिनमें से एक ने डर के मारे स्नान ही नहीं किया, बाकी ने कपिलधारा के नीचे स्नान किया।

दोपहर हो गई थी, खानपान की व्यवस्था शुरू हुई और इस प्रयोजन के लिए तीन चूल्हे जलाये गए। भोजन के बाद शाम को पुनः आगे के कार्यक्रम पर विचार किया गया किन्तु मतैक्य नहीं हो सका। फलतः यात्री-दल के सभी सदस्य तितर-बितर हो गए। लेखक को कुछ सुख मिला और वह माई की बगिया की ओर चल पड़ा। माई की बगिया के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि गुलबकावली के फूलों की यह एकमात्र वाटिका है। दुर्भाग्य से उन दिनों वर्षाऋतु नहीं थी अतः गुलबकावली के फूलों के दर्शन संभव नहीं हो सके। यहीं लेखक की मुलाकात एक बाबा से हुई जिनके साथ लेखक काफी देर तक बातचीत करता रहा। बातचीत संसार भर के विषयों पर होती रही किन्तु फिर भी लेखक को इस बातचीत से कोई विशेष सुख नहीं मिल पाया। इसी बीच वहां भीलों का एक दल निकल आया। भीलों ने परम्परागत वेशभूषा धारण कर रखी थी। लेखक उनके साथ बातचीत में लग गया। लेखक के साथ एक मित्र भी थे जो कि लोकजीवन, लोकगीतों में गहन रुचि रखते थे। लेखक के उस मित्र ने भीलों के दल से कोई लोकगीत सुनाने का आग्रह किया किन्तु वे लोग लोकगीत की तुलना में पेट की भूख से अधिक परेशान थे। अन्ततः लेखक के मित्र ने लोकगीत का लोभ छोड़ा और ये दोनों वहां से चल पड़े। वहां से मुड़ने के पश्चात् लेखक को लगा कि माई की बगिया का भी आकर्षण वैसा नहीं रह गया था जैसा कि सुना जाता था। ऐसा सुना जाता है कि एक समय यह बगिया सौ एकड़ धरती में थी किन्तु अब तो बगिया के नाम पर कठिनाई से एक बिस्वा धरती रह गई थी। एक समय था जबकि इस सारी बगिया में दलदल हुआ करती थी और इस कारण उन दिनों यह बगिया बहुत फूलती-फलती थी किन्तु अब तो एकदम सपाट हो गई है।

रात होने पर यात्रा-दल ने विश्राम किया। भावी कार्यक्रम पर विचार हुआ किन्तु पुनः सभी अपने-अपने ढंग से विचार प्रकट करने लगे। यात्रादल के सदस्यों में मत विभिन्नता देखने पर लेखक को इस यात्रा पर आने पर ही पश्चाताप हुआ और उसे ऐसा अनुभव हुआ कि जिस प्रकार अकेले व्यक्ति को घर में आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता ठीक उसी प्रकार कई लोगों के साथ होने पर यात्रा का आनन्द सुलभ नहीं हो सकता। फलतः यात्रादल के सभी सदस्यों ने मन-ही-मन यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि जब तक उनके ऊपर गृहस्थी का दायित्व है तब तक वे यात्रा पर नहीं निकलेंगे। यही नहीं, उन्होंने यह भी सोचा कि यदि उन्हें यात्रा पर जाना भी पड़ा तो वे अपने घर के सदस्यों को इसकी सूचना नहीं देंगे और यात्रा से लौटने के बाद के सम्बन्ध में किसी प्रकार की डींग नहीं हांकेंगे। इसी प्रसंग में लेखक ने राजनीतिज्ञ शृंगाल पंडित की भी एक कथा का उल्लेख किया है जिन्होंने संकल्प लिया था कि "अब जो जियबो बाग न जाइबों। बाग जो जाइबों तो आम न खइबों। आम जो खइबों तो लोक लोकैया। कबहुं न खइबों झांखर पैयां।" इस कथा के अनुसार एक बार शृंगाल पंडित आम्रकूट जा पहुंचे जहां धरती पर टपके हुए एक आम को देखकर उनके मुंह में पानी भर आया किन्तु ज्यों ही उन्होंने आम को अपने मुंह से लगाया, तभी एक बिच्छू ने डंक मारा। कदाचित इसी कष्टप्रद अनुभव को देखते हुए उन्होंने यह संकल्प लिया था।

लेखक और उनके सारे साथी अमरकंटक की यात्रा करने तो अवश्य गए थे किन्तु वे यही सोचकर गए थे कि मानो आम्रकूट की यात्रा पर आए हों। यात्रादल को यहां आम के एक-दो पेड़ देखने को मिले किन्तु पिछले दो-तीन दिनों का अनुभव ऐसा था जो कि आम्रकूट के लिए बिच्छू के डंक की तरह समझा गया। हमारे यहां आम को बहुत महत्त्व प्रदान किया गया है। यह सच है कि बिच्छू के लिए आम एक विशेष सम्मोहन होता है किन्तु साहित्यकारों के लिए भी आम का सम्मोहन कम नहीं रहा है। कामदेव के पांच बाणों में सर्वप्रमुख स्थान आम को दिया गया है।

अगले दिन यह यात्रा-दल सोनमुड़ा देखने के लिए चल पड़ा। सोनमुड़ा का शाब्दिक अर्थ है सोन का शीर्ष। यह एक प्रकार का ढाल था जिसके ऊपर एक छोटा-सा बुलबुला दिखाई पड़ता था। इस बुलबुले में से पानी के बुल्ले हर समय निकलते रहते थे और सोनमुड़ा के नीचे कहीं जाकर आंखों से ओझल हो जाते थे। सोन और नर्मदा की कथा का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। इस कथा के अनुसार सोन और नर्मदा के विवाह की पूरी तैयारी हुई थी, बारात भी सज-धज

कर आई थी किन्तु फिर भी बारात को निराश ही वापस लौटना पड़ा था। कहते हैं कि तब से अभी तक ये दोनों बिछुड़े हुए हैं, मिल नहीं पाये हैं। इस प्रकार का विछोह प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कभी-न-कभी अवश्य आता है। यह विछोह केवल मनुष्य के जीवन में ही नहीं अपितु श्रेय और प्रेय के बीच, मन और अत्मा के बीच, साध्य और साधन के बीच, आत्मा और परमात्मा के बीच कहीं भी हो सकता है। ऐसे विछोह की अनुभूति संसार में प्रत्येक व्यक्ति को कभी-न-कभी अवश्य होती है। विछोह की यह अनुभूति सदैव कष्टप्रद नहीं होती बल्कि सच तो यह है कि ऐसी अनुभूति मनुष्य को सदैव पवित्र बनाए रखती है। विछोह की यह अनुभूति मनुष्य को कभी भी नीचे नहीं गिराती, उसे ऊंचा उठाती है, आशावान बनाती है।

तथापि सोन के दर्शन इस पथ पर बहुत दूर तक नहीं होते। इस पथ का भी अपना आकर्षण है। पहली वर्षा के साथ ही समूचा आकाश श्यामल हो जाता है और उस समय यहां का वातावरण सामान्य व्यक्ति को ही नहीं योगी को भी सम्मोहित किए बिना नहीं रह सकता। यही नहीं, इस पथ का एक अपना सौन्दर्य है, एक सम्मोहन है जो किसी को बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। इस सौन्दर्य में विस्मयजन्य आनन्द भले ही न हो किन्तु प्रौढ़ हृदय की रसानुभूति अवश्य है। कदाचित् इसी रसानुभूति ने कालिदास को दुष्यन्त, हर्ष को उदयन, बाण को पुण्डरीक और भवभूति को राम जैसे महान चरित्रों के निर्माण की प्रेरणा दी होगी।

इस यात्रा-दल की यह यात्रा तीन् दिन तक चली। तीन दिनों के बाद संध्या के समय इन लोगों ने लौटने का कार्यक्रम बनाया। रास्ते में सभी ने अपने-अपने प्रान्तों के लोकगीत गाए। केवल एक महिला और उसके पति शहडोल में ही उतर गए। यात्रा का अन्त चांदनी रात में हुआ।

अमरकण्टक की सालती स्मृति : तात्विक विवेचन

'अमरकण्टक की सालती स्मृति' नामक निबन्ध में लेखक ने अमरकंटक तक की यात्रा का वर्णन किया है। अमरकंटक की यात्रा अनेक दृष्टियों से लेखक के लिए स्मरणीय रही है; क्योंकि इस यात्रा पर लेखक अकेला नहीं अपितु कई अन्य व्यक्तियों के साथ गया था। इसके अतिरिक्त यह यात्रा मोटर कार से की गई थी और इस कारण कई स्थानों पर पड़ाव डाले गए थे। प्रकृति से एक सहृदय साहित्यकार होने के नाते लेखक को इस यात्रा में कई स्थानों पर अद्भुत आनन्द

की प्राप्ति हुई थी। अमरकंटक के प्रति लेखक के मन में विशेष आकर्षण इसलिए बना हुआ था क्योंकि नर्मदा नदी का उद्गम इसी स्थल से हुआ है। लेखक सहित यह यात्रा-दल मोटरकार से शहडोल से रवाना हुआ था। तीन दिन के इस यात्रा-विवरण को लेखक ने बहुत ही प्रभावशाली शैली में व्यक्त किया है। नदियों, जलकुण्डों, वनप्रदेशों के प्रति लेखक के मन में सहज आकर्षण रहा है और इस कारण इस यात्रा में लेखक को जब भी अवसर मिला, उसने नदियों, कुण्डों और वन प्रदेशों में जाकर पूरा सुख-लाभ अर्जित किया। जहां तक निबन्ध के तत्त्वों का प्रश्न है, विद्वानों ने निबन्ध के आठ तत्त्व माने हैं और वे तत्त्व इस प्रकार हैं—रोचकता, भावात्मकता, सजीवता, संगीतात्मकता अर्थात् काव्यगुणसम्पन्नता, वैयक्तिकता, एकसूत्रता, हास्य एवं व्यंग्य का समावेश तथा कलात्मकता। निबन्ध के इन तत्त्वों के आधार पर 'अमरकंटक की सालती स्मृति' नामक निबन्ध की विवेचना इस प्रकार की जा सकती है :

(क) **रोचकता** : निबन्ध प्रायः प्रबुद्ध पाठक वर्ग के लिए होते हैं। निबन्ध का विषय कुछ भी हो सकता है किन्तु प्रतिभासम्पन्न निबन्धकार शुष्क विषय को भी समुचित रोचकता के साथ प्रस्तुत कर सकता है। रोचकता के कारण निबन्ध के पाठक का मन ऊबता नहीं है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, वह मूलतः एक यात्रा-विवरण है। लेखक ने जहां-तहां कुछ हल्के-फुल्के प्रसंगों का समावेश करके निबन्ध में पर्याप्त रोचकता भर दी है। निबन्ध का आरम्भ ही बहुत रोचक ढंग से हुआ है। निबन्ध का आरम्भ करते हुए लेखक कहता है कि "बरसों पहले मेघदूत पढ़ा था और तब नर्मदा को अपनी गोदी में खिलाने वाले और दुलारकर झरनों के पलनों में झुलाने वाले आम्रकूट के बारे में मन में एक बड़ी तीव्र उत्कंठा जगी थी। यहां आने पर जब पता चला कि आज उसी का नाम अमरकंटक है तो अज्ञेय जी की यह बात मन में चुभने लगी कि कभी-कभी कुछ नाम भी बड़े मर्मस्पर्शी होते हैं जैसे यह अमरकंटक।" प्रस्तुत निबन्ध में रोचकता लाने के लिए लेखक ने प्राचीन राजनीतिज्ञ श्रृगाल पंडित का भी एक रोचक प्रसंग जोड़ दिया है। इस प्रसंग के अनुसार कहते हैं कि एक बार श्रृगाल पण्डित आम्रकूट में पहुंच गए जहां एक टपका हुआ आम धरती पर पड़ा मिला। श्रृगाल पण्डित के मुंह में पानी भर आया और उन्होंने आम को अपने मुह से लगा लिया किन्तु तभी आम की गन्ध से आकृष्ट एक बिच्छू ने उन्हें काट लिया। तभी उन्होंने मन-ही-मन यह संकल्प कर लिया कि "अब जो जियबों तो बाग न जइबों। बाग जो जइबों तो आम न खइबों,

आम जो खइबो तो लोक लोकैया। कबहुं न खइबों झांखर पैया।"

(ख) **भावात्मकता :** भावात्मकता के समावेश से निबन्ध में विचारगत दुरूहता नहीं आ पाती। निबन्धकार अपने निबन्ध में केवल बुद्धितत्त्व को ही व्यक्त नहीं करता अपितु हृदय पक्ष को भी समाविष्ट करता है। यह भावात्मकता निबन्धकार और पाठक के बीच एक प्रकार के सेतु का कार्य करती है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है लेखक ने जहां-तहां भावात्मकता का संस्पर्श दिया है। उदाहरण के लिए निबन्ध की ये पंक्तियां देखिए "हां, यह याद जरूर है कि उसी समय जंगल की पगडंडी से भील यात्रियों का एक दल प्राकृतिक वेश-भूषा से सुसज्जित वहां आया और कोई भूखा हो, प्यासा हो, मरता हो, जीता हो, वह यह समझते थे कि हर एक बनवासी और हर एक ग्रामवासी चौबीस घण्टे बाबू लोगों को गाना सुनाने के लिए बना है और बेचारे बारह-चौदह कोस चलकर थके हुए कुछ कच्चा-पक्का सेकने के लिए तैयारी कर रहे थे कि इतने में मेरे मित्र ने अनुरोध किया कि गाना सुनाओ। खैर, उन्होंने तो नहीं लेकिन उनके साथ के दो-चार बच्चों ने इसी बीच भूख के कारण जो विकट रागिनी छेड़ी और उनके अभिभावकों ने भी आग जलाना छोड़कर उनको मारने-पीटने और रागिनी को और तार-स्वर देने में सहायता पहुंचाई तो हमारे मित्र ने भी कान मूंदा और कहा कि अब चलना चाहिए।"

(ग) **सजीवता :** निबन्ध की एक अन्य विशेषता सजीवता होती है। सजीवता का आशय इस बात से है कि निबन्ध की विषयवस्तु सजीव होनी चाहिए क्योंकि ऐसा होने पर ही निबन्ध में रोचकता और प्रभावोत्पादकता आ सकती है। प्रस्तुत निबन्ध की विषयवस्तु का सम्बन्ध अमरकंटक नामक स्थल से है। ऐसा माना जाता है कि अमरकंटक विंध्यपर्वत में वहां स्थित है जहां से नर्मदा नदी का उद्गम हुआ है। प्रकटतः प्रस्तुत निबन्ध की विषयवस्तु का सम्बन्ध एक स्थान विशेष से है और इसलिए उसके सजीव अथवा निर्जीव होने का प्रश्न नहीं होता। तथापि निबन्धकार ने निर्जीव से दीखने वाले विषय को भी अपनी प्रतिभा का संस्पर्श देकर बहुत सजीव बना दिया है।

(घ) **संगीतात्मकता अर्थात् काव्यगुणसम्पन्नता :** संगीतात्मकता का आशय इस बात से नहीं होता कि निबन्ध में संगीत का समावेश हो। संगीतात्मकता का आशय काव्यगुणसम्पन्नता से होता है और यह काव्यगुणसम्पन्नता तभी आ सकती है जबकि निबन्ध में माधुर्य एवं प्रसादात्मकता के गुणों का समावेश हो। प्रस्तुत निबन्ध की

निम्न पंक्तियों में इसी प्रकार की मधुरता, कोमलता के दर्शन होते हैं, "पहले यह दलदल होने के कारण शायद वह बेहद फूलती रही और जितनी ही वह फूलती रही, उतनी ही लोग उसे पाने की कोशिश करते रहे और दल-दल में फंसकर मरते रहे। और मनुष्य की अन्य विफलताओं के समान ही यह विफलता भी इस स्थान को मोहक रूप देने में कृतकार्य हुई। पर आज सब सपाट है। स्मृति केवल नाम में सिमटी हुई है।"

(ङ) **वैयक्तिकता :** निबन्ध और विशेष रूप से ललित-निबन्ध की एक विशेष पहचान लेखक की वैयक्तिकता होती है। जिस निबन्ध में निबन्धकार के व्यक्तित्व की छाप नहीं होती, वह निबन्ध वस्तुतः निबन्ध कहलाने का पात्र नहीं है। यह उल्लेख्य है कि निबन्ध में व्यक्त विचार, भाव और यहां तक कि अभिव्यक्ति की शैली भी लेखक की रुचि, व्यक्तित्व की परिचायक है। वैयक्तिकता के गुण के कारण ही निबन्ध को लेखक से पृथक विधा माना जाता है। प्रस्तुत निबन्ध में लेखक के व्यक्तित्व की सुस्पष्ट छाप देखी जा सकती है। लेखक के व्यक्तित्व की यह छाप केवल वर्ण्य-विषय में ही नहीं अपितु उसकी अभिव्यक्ति-शैली में भी देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए निम्न पंक्तियां देखिए "रात में और साथ के लोगों के सो जाने पर एकाएक मैं चुपके से शय्या से उठा और वन की ओर जा निकला, वन जो बिलकुल लगा हुआ था और जहां वनराज के दर्शन की सम्भावना प्रतिक्षण सन्निहित थी। विशेष रूप से ऐसी मृदुल चांदनी में शय्या छोड़ते समय मुझे एक साथ जाने कितनी बातें याद आयीं। याद आया कि कालीदास का मेघदूत अपनी यात्रा में पहला डेरा यहीं डालने आया होगा, याद आया कि वह प्रतिवर्ष यहीं से हिमालय की गोद में बसी हुई अलका में उस संस्कृति की उस पुरातन रागिनी का संदेश वहन करता होगा जो नर्मदा की शिलाओं की सहचरी है, जो दीप्ति और गरिमा के लिए दावा न करे पर जो स्थिरस्निग्धता और सहज सुंदरता में हिमालय के हिम-मुकुट को एक बार पिघला देने की क्षमता रखती हो, जिसके कण-कण में बसने वाले शिव, हिमालय के परमोच्च शिखर पर सादर प्रतिष्ठापित किए गए हों और जो देश के पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण को जोड़ने वाली प्रकृति की सिद्ध मेखला रही है।" जहां तक प्रस्तुत निबन्ध की शैली और भाषा पर निबन्धकार के व्यक्तित्व की छाप का प्रश्न है उस पर कलात्मकता शीर्षक के अधीन पृथक रूप से विचार किया जाएगा।

(च) **एकसूत्रता :** निबन्ध की एक अन्यतम विशेषता यह होती है कि उसमें

आद्योपान्त एकसूत्रता का निर्वाह होता है। निबन्ध आकार में छोटा अथवा बड़ा हो सकता है किन्तु यह आवश्यक है कि उसमें आरम्भ से लेकर अन्त तक विषयगत एकसूत्रता होनी चाहिए। यह सच है कि निबन्ध में लेखक तरह-तरह के प्रसंगों और घटनाओं आदि का वर्णन करता है किन्तु फिर भी यह आवश्यक है कि वे प्रसंग तथा घटनाएं बाह्यतः अलग-अलग होते हुए भी वर्ण्य विषय की एकसूत्रता बनाए रखते हों। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, लेखक ने इस विशेषता का बराबर ध्यान रखा है। प्रस्तुत निबन्ध में लेखक ने अमरकंटक नामक स्थल की यात्रा का वर्णन किया है और इस प्रकार लेखक का वर्ण्य विषय अमरकंटक है। लेखक ने अमरकंटक की इस ऐतिहासिक यात्रा को ऐसी कुशलता के साथ वर्णित किया है कि पाठक के मानस-पटल से अमरकण्टक का दृश्य लेशमात्र को भी ओझल नहीं होता। निबन्ध का आरम्भ ही अमरकण्टक की प्राकृतिक छटा के वर्णन के साथ होता है। लेखक के शब्दों में, "बरसों पहले मेघदूत पढ़ा था और तब नर्मदा को अपनी गोदी में खिलाने वाले और दुलार कर झरनों के पलने में झुलाने वाले आम्रकूट के बारे में मन में एक बड़ी तीव्र उत्कंठा जगी थी। यहां आने पर जब पता चला कि आज उसी का नाम अमरकण्टक है तो अज्ञेयजी की वह बात मन में चुभने लगी कि कभी-कभी कुछ नाम भी बड़े मर्मस्पर्शी होते हैं, जैसे यह अमरकण्टक।" इसी प्रकार निबन्ध का समापन भी लेखक ने इसी ऐतिहासिक स्थल की यात्रा के समापन से किया है।

(छ) **हास्य एवं व्यंग्य का समावेश** : निबन्ध की सफलता की एक महत्त्वपूर्ण कसौटी उसकी रसात्मकता भी होती है। निबन्धों मे प्रायः गंभीर विचारों-भावों आदि का वर्णन किया जाता है अतः विषयगत बोझिलता से बचने के लिए लेखक जहां-तहां हल्के-फुल्के हास्य-व्यंग्य का समावेश कर देता है। निश्चय ही इस प्रकार निबन्ध की रोचकता बढ़ जाती है और पाठक को तनिक सरसता का सुख-प्राप्त हो जाता है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, लेखक ने प्राचीन राजनीतिज्ञ शृगाल पण्डित का प्रसंग जोड़कर जहां हल्के हास्य का पुट दे दिया है, वहां निबन्ध में रोचकता की भी अभिवृद्धि हो गई है। शृगाल पंडित की कथा का वर्णन करते हुए लेखक ने कहा है कि "साधारण लोगों की बोलचाल की भाषा में किसी समय की बात है कि शृगाल पण्डित हमी लोगों की तरह से किसी आम्रकूट में जा पहुंचे और वहां जो एक आम को अपने मुंह में रखा, त्योंही आम की गन्ध से आकृष्ट होकर विच्छू ने वह डंक मारा कि शृगाल पण्डित कुश लेकर तुरन्त संकल्प पढ़ने बैठ गए

—इस आशंका में कि कहीं प्राण पहले न निकल जाएं अब जो प्राण रहेंगे तो आम के बाग में नहीं जाऊंगा और अगर कहीं दुर्भाग्य ने ला पटका भी तो अब आम का फल तो चखना ही नहीं है और फिर कहीं चाण्डाल जिह्वा ने आम के लिए लोभ प्रकट ही किया तो कम-से-कम जमीन पर पड़ा आम देखना ही नहीं, चखना ही नहीं। ऊपर से जो आम गिर रहा हो, उसको मुंह में लेकर खाना यह शृगाल पण्डित का पीढ़ी-दर-पीढ़ी के लिए वसीयतनामा है।" इसी प्रकार लेखक ने अन्य कई स्थलों पर भी हास्य एवं व्यंग्यपूर्ण शब्दावली का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए "इसलिए मासानां मासोत्तमेमासे आषाढ़ मासे हम लोगों ने यह संकल्प किया कि जब तक गृहस्थी का जुआ है तब तक घूमने नहीं जाऐंगे—जाएंगे भी तो इसका नोटिस नहीं देंगे और घूमकर आएंगे तो घूमने की डींग नहीं हांकेंगे।" इसी प्रकार निम्न पंक्तियां भी द्रष्टव्य हैं "उस दिन रात में फिर उखड़ी हुई वीणा के तार ठीक करने की कोशिश जो हुई तो बजाय स्वर मिलने के तार और झनझनाने लगे और जितनी ही हमने सामूहिक व्यक्तिगत रूप से जयदेव-विद्यापति का मंत्र एक करके प्रयोग किया उतना ही अधिक मान का वितान भी बढ़ने लगा और अन्त में कालिदास से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक एक शृंगारी कवि का तर्पण करते हुए मैंने जब दर्शनशास्त्र पर एकदम अष्टम स्वर में व्याख्यान देना प्रारम्भ किया तब जाकर देवियां शान्त हुई और हम सबने एक-एक करके तीन बार कर्ण-स्पर्शपूर्वक यह प्रतिज्ञा की कि 'बहुवचने झल्येति' पाणिनि ने बहुत सही कहा है और जैसे अकेले का आनन्द घर नहीं वैसे दुकेले का आनन्द बाहर नहीं।"

(ज) **कलात्मकता :** कलात्मकता का आशय कलागत सौन्दर्य से होता है और कलागत सौन्दर्य के अधीन प्रायः भाषा-शैली आदि का विवेचन किया जाता है। निबन्ध की अन्तर्वस्तु का महत्त्व तो होता ही है किन्तु उसके साथ-साथ उसमें बहिरंग का भी विशिष्ट महत्त्व होता है। निबन्ध के बाह्य कलेवर के सजाने-संवारने में भाषा-शैली की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यही नहीं, निबन्ध की भाषा-शैली जहां एक ओर निबन्धकार के व्यक्तित्व की परिचायक होती है वहां उसके अध्ययन-स्तर की भी परिचायक होती है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध की भाषा का प्रश्न है वह तत्सम प्रधान साहित्यिक भाषा है। प्रस्तुत निबन्ध की भाषा की एक अन्य विशेषता यह है कि उसमें साहित्यिक प्रांजलता के होते हुए भी दुरूहता अथवा क्लिष्टता कहीं नहीं दीखती। उदाहरण के लिए प्रस्तुत निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए "जिस समय हम लोग स्नान करके निकले उसी समय विचार हुआ कि यथार्थ और यथार्थ

के चित्र में कितना अन्तर होता है। यह सचमुच बड़ी विस्मयकारिणी बात है। कुण्ड के इन मन्दिरों का जितना सुन्दर चित्र लगता है, उतना उनका यथार्थ नहीं और वनों का, घाटियों का और पूरे परिसर का जो मनोरम चित्र आंखों में झूलता है, वह चित्र में नहीं उतर पाता। इसे मनुष्य की शक्ति की पराजय कहें या प्रकृति की लज्जा का निदर्शन, कुछ समझ में नहीं आता। लेखक ने जहां-तहां अंग्रेजी और उर्दू भाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है किन्तु ऐसा प्रयोग बहुत ही सीमित रूप से हुआ है। अंग्रेजी शब्दों में 'ओवरसियर, नोटिस, आफिसर, कीट्स' आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इसी प्रकार प्रस्तुत निबन्ध में उर्दू भाषा के जिन शब्दों का प्रयोग मिलता है उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—मेहरबानी, बिस्तर, वगैरह, रोज, मुसीबतें, बहरहाल, रास्ता, आमतौर से, हिम्मत। संस्कृत भाषा के शब्दों का प्रयोग सबसे अधिक किया गया है। यही नहीं, कई स्थलों पर तो संस्कृत की बहुचर्चित कहावतों का भी सार्थक प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए निम्न प्रयोग देखिए—मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना, बहुवचने झल्देति, मासानां मासोत्तमेमासे आषाढ़मासे आदि।

प्रस्तुत निबन्ध में लेखक ने प्रसादात्मक शैली का प्रयोग किया है जिसके परिणामस्वरूप निबन्ध में आद्योपान्त रसात्मकता का संचार बना रहा है। तरल अनुभूति और भावप्रवणता का संस्पर्श पाकर प्रस्तुत निबन्ध की भाषा-शैली और भी अधिक आकर्षक बन पड़ी है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"दुपहरी में तीन चूल्हे दगे और करीब-करीब सांझ तक चपरासियों के साथ नीचे-ऊपर, कभी आलू के लिए, कभी पानी के लिए, कभी किसी दूसरी छोटी-मोटी चीजों के लिए चढ़ते-उतरते जब समस्त संचित आनन्द बेचारा इस महंगे मूल्य के बाद पछताने लगा तब जाकर दो कौर सुअन्न कहने के लिए मृदु, पर तपती हुई तिपहरिया में गले के नीचे गया। अब शाम को फिर वही 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' षटराग शुरू हुआ। कोई ईर घाट, कोई वीर घाट, विशेष रूप से महिला वर्ग मानो अपने मत के ऊपर आज के साहित्यकारों की भांति अडिग था और इसके कारण मित्रों में से भी कुछ झल्लाये, कुछ उखड़े, कुछ उदास हुए और अन्त में सब तितर-बितर हो गए।" विद्यानिवास मिश्र जी के निबन्धों की भाषा-शैली में एक उदात्तता के दर्शन होते हैं, कहीं भी हल्कापन नहीं दीखता। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो एक-एक शब्द, एक-एक वाक्य किन्हीं कुशल हाथों से मढ़कर रखा गया हो। भाषा और शैली की यह उदात्तता निबन्ध में आद्योपान्त देखी जा सकती है।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रस्तुत निबंध में निबन्ध की सभी विशेषताओं का सम्यक् निर्वाह हुआ है। लेखक ने अमरकंटक की यात्रा को बहुत ही सजीव और सरस रूप प्रदान किया है जो कि निश्चय ही उसकी असाधारण प्रतिभा का परिचायक है। वर्ण्य-विषय से कहीं अधिक आकर्षक और प्रभावोत्पादक, उसकी प्रस्तुति रही है जिसका श्रेय लेखक की भाषा-शैली को दिया जा सकता है।

महत्त्वपूर्ण स्थलों की सप्रसंग व्याख्या

"बरसों पहले मेघदूत पढ़ा था और तब नर्मदा को अपनी गोदी में खिलाने वाले और दुलारकर झरनों के पलनों में झुलाने वाले आम्रकूट के बारे में मन में एक बड़ी तीव्र उत्कण्ठा जगी थी। यहां आने पर जब पता चला कि आज उसी का नाम अमरकंटक है तो अज्ञेय जी की वह बात मन में चुभने लगी कि कभी-कभी कुछ नाम भी बड़े मर्मस्पर्शी होते हैं जैसे यह अमरकंटक। जाने कितने दिनों से मुझे यह नाम सालता रहा।" (पृ० १०)

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियां श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह में संकलित 'अमरकंटक की सालती स्मृति' नामक निबन्ध से उद्धृत की गई हैं जिनमें लेखक अमरकंटक के नामकरण पर विचार कर रहा है।

व्याख्या : अमरकंटक के नामकरण पर विचार करते हुए लेखक कह रहा है कि "कई वर्षों पहले मेघदूत में आम्रकूट के सम्बन्ध में पढ़ा था। आम्रकूट का उल्लेख उस स्थल के रूप में किया गया था जहां से नर्मदा नदी का उद्गम हुआ है। मेघदूत में आम्रकूट का वर्णन करते हुए बताया गया है कि नर्मदा नदी आम्रकूट की गोद में खेलती है और झरनों के पलनों में झूलती है। तभी से मेरे मन में इस आम्रकूट के दर्शन करने की तीव्र लालसा उत्पन्न हुई थी। अब, जब मैं अमरकंटक की यात्रा पर आया और जब मुझे यह पता चला कि मेघदूत में जिस आम्रकूट का वर्णन मिलता है, वह वस्तुतः अमरकंटक ही है तो स्वभावतः मैं इसके नामकरण के बारे में विचारशील हो गया। तभी मुझे अज्ञेय का यह कथन भी याद आ गया कि कोई-कोई नाम भी कितना मर्मस्पर्शी होता है। अमरकंटक का नाम भी वस्तुतः हृदय को सहज ही छू लेता है।

"संध्या समय हम लोग सदलबल नर्मदा कुण्ड में तन-मन की तपन बुझाने

उतरे। कुण्ड के बीच में दो-तीन मंदिर हैं और उनमें शिव प्रतिष्ठापित हैं और यह कहा जाता है कि यह कुण्ड ही नर्मदा का आदि स्रोत है जिसके अन्दर से नर्मदा निकलकर कुछ दूर लुप्त होकर पुनः नियमित रूप से बहने लगती है। कुण्ड के पार्श्व में अनेक मंदिर हैं जो प्रायः सभी कलचुरि राजाओं के बाद के बनवाए हुए हैं। कुछ दूर पर पातालेश्वर मन्दिर कलचुरि राजा कर्णदेव का बनवाया हुआ है जो स्थापत्य में खजुराहो के मंदिरों के समकक्ष है। जिस समय हम लोग स्नान करने निकले उस समय यह विचार हुआ कि यथार्थ और यथार्थ के चित्र में कितना अन्तर होता है। यह सचमुच बड़ी विस्मयकारिणी बात है। कुण्ड के इन मन्दिरों का जितना सुन्दर चित्र लगता है, उतना उनका यथार्थ नहीं और वनों का, घाटियों का और पूरे परिसर का जो मनोरम चित्र आंखों में झूलता है, वह चित्र में नहीं उतर पाता। इसे मनुष्य की शक्ति की पराजय कहें या प्रकृति की लज्जा का निदर्शन कुछ समझ में नहीं आता।"

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियां श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह में संकलित 'अमरकण्टक की सालती स्मृति' नामक निबन्ध से उद्धृत की गई हैं जिनमें लेखक नर्मदा कुण्ड के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन कर रहा है। अमरकण्टक की यात्रा पर निकले लेखक और उसके साथियों का दूसरा पड़ाव नर्मदा-कुण्ड पर पड़ा था। प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक इसी कुण्ड के आसपास की प्राकृतिक छटा का वर्णन कर रहा है।

व्याख्या : नर्मदा-कुण्ड के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लेखक कह रहा है कि 'हमारा यह यात्रीदल शाम के समय नर्मदा पर पहुंचा। यहां स्नान करने पर हमारी यात्रा की सारी थकान दूर हो गई। कुण्ड में नहाने से स्वभावतः वातावरण के ताप से भी मुक्ति मिल पाई। इस कुण्ड के बीच में दो-तीन मन्दिर हैं जिनमें भगवान शिव की मूर्ति प्रतिष्ठित है। ऐसा बताया जाता है कि नर्मदा नदी का उत्स यही कुण्ड है अर्थात् नर्मदा नदी इसी कुण्ड से निकली है। इस कुण्ड में से निकलकर कुछ दूरी तक तो नर्मदा नदी के दर्शन नहीं होते किन्तु उसके बाद नर्मदा का नियमित प्रवाह दीख पड़ता है। यह सारा स्थान प्राचीन मन्दिरों से घिरा हुआ है। यही नहीं कि कुण्ड के बीच में दो-तीन मन्दिर हैं, बल्कि कुण्ड के आसपास कई मंदिर बने हुए हैं। इन मन्दिरों का निर्माण कलचुरि के राजाओं के बाद हुआ है। कुण्ड से कुछ दूरी पर पातालेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर है जिसका निर्माण कलचुरि राजा

कर्णदेव के हाथों हुआ था। यह मन्दिर स्थापत्य की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसके भीतर उसी स्थापत्यकला के दर्शन होते हैं जिसका प्रयोग खजुराहो के विश्वप्रसिद्ध मन्दिरों में किया गया है। इन मन्दिरों को देखकर हमारे भीतर एक निराशाजन्य भाव भी उत्पन्न हुआ, क्योंकि इन मन्दिरों के जो चित्र देखे थे, वे वास्तविक मन्दिरों से कहीं अधिक सुन्दर थे। यह देखकर स्वभावतः आश्चर्य हुआ कि कई बार यथार्थ और यथार्थ के चित्र में कितना अधिक अन्तर होता है। भाव यह है कि प्रायः यथार्थ की तुलना में यथार्थ का चित्र अधिक सुन्दर और आकर्षक होता है। नर्मदा कुण्ड के पार्श्व में बने हुए मन्दिर को देखकर हमें ठीक यही अनुभूति हुई। इन मन्दिरों को अपनी आंखों से देखने पर ऐसा लगा कि वे वस्तुतः उतने सुन्दर नहीं हैं जितने कि चित्रों में दीखते हैं। ठीक इसी प्रकार उस पूरे परिसर का सौन्दर्य देखते ही बनता था। वहां के वन-प्रदेश घाटियों और समग्र परिसर को देखकर आंखों को जो तृप्ति मिलती थी, वह निश्चय ही उनके चित्रों को देखकर नहीं मिल सकती। यह कहना कठिन है कि ऐसा क्यों होता है? ऐसा भी हो सकता है कि इन घाटियों और पूरे परिसर के चित्र के भीतर मनुष्य पूरा प्रयास करने पर भी वास्तविक सौन्दर्य उत्पन्न करने में असफल रहा है। यह भी कहा जा सकता है कि प्रकृति लज्जावश अपना समूचा सौन्दर्य प्रकट नहीं होने देती और इस कारण मनुष्य द्वारा कैमरे से खींचे गए चित्र में इस परिसर का सच्चा सौन्दर्य सिमट नहीं पाता।

विशेष—प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने यथार्थ और यथार्थ के चित्र के बीच के अन्तर की बात कहकर अद्भुत दूर दृष्टि का परिचय दिया जाता है।

"फिर याद आया कि यहीं सोन और नर्मदा के विवाह की बारात सजी थी और सजकर भी बिना भांवरें पड़े लौट पड़ी थी। जाने तब से कितने निर्झर, कितने गिरि, वन-उपवन और सरि-सरिताएं मनावन करने में लगी होंगी पर एक बार के बिछुड़े अभी तक मिल नहीं पाए। फिर याद आया कि यह विछुड़न प्रत्येक मनुष्य के जीवन में है, प्रत्येक मनुष्य कभी-न-कभी इस बिछुड़न का अनुभव करता है और इसके साथ-साथ यह भी अनुभव करता है कि मिलन की आशा कैसी मादक थी और इसी में वह मिलन का वास्तविक सुख पो जाता है। क्योंकि शायद अप्राप्त मिलन ही सुख है, प्राप्त नहीं। याद आया कि कीट्स ने कहीं गाया कि श्रुतरागिनी मधुर है तो जो रागिनी सुनी न गयी, गायी न गयी, उसकी गूंज जो ध्वनि निकलने के पहले उठ आई है वह कहीं अधिक मधुर होती है। यह बिछुड़न चाहे मनुष्य के

श्रेय और प्रेय के बीच में हो, चाहे साध्य और साधन के बीच में हो, चाहे विषय और विषयी के बीच में हो, मन और आत्मा के बीच में हो, आत्मा और विश्वात्मा के बीच में हो या गिरा और नयन के बीच में हो पर प्रत्येक को इस का अनुभव होता है। और यह अनुभव उसे बराबर पवित्र बनाता है, ऊंचे उठाता है, हताश नहीं करता और नीचे नहीं गिराता। शायद बिछुड़ने की इसी जलन का ही आस्वाद लेने के लिए मेघ यहां ठहरा हो।"

(पृ० १२)

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियां श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह में संकलित अमरकंटक की सालती स्मृति' नामक निबन्ध से उद्धृत की गई हैं जिनमें लेखक ने नर्मदा और सोन के विवाह से पूर्व ही उनके वियोग की कथा के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि संसार में हर व्यक्ति को कभी-न-कभी इस प्रकार के वियोग की अनुभूति अवश्य होती है।

व्याख्या : सोन और नर्मदा के विवाह-प्रसंग का स्मरण करते हुए लेखक कह रहा है कि "जब मैं रात के समय अपने अन्य साथियों को सोता छोड़कर अकेले ही वन-प्रदेश की ओर चल पड़ा तो मुझे तरह-तरह की स्मृतियों ने आ घेरा। मुझे याद आया कि यहीं सोन और नर्मदा के विवाह की बारात सजी थी किन्तु वह विवाह कहां संभव हो पाया था। वह बारात बिना फेरे पड़े ही वापस लौट गई थी। उसके उपरान्त निर्झरों, पर्वतों, वन-उपवनों और नदियों ने इन दोनों को मिलाने के लिए अथक प्रयास किए होंगे किन्तु यह मिलन कभी भी संभव नहीं हो पाया। विवाह होने से पूर्व बिछुड़े हुए ये दोनों प्राणी आज तक एक-दूसरे से नहीं मिल सके। तभी मुझे ध्यान आया कि इस प्रकार का विछोह कोई नई बात नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कभी-न-कभी इस प्रकार के वियोग की तिक्त अनुभूति अवश्य ही होती है। यह विछोह भी एक बड़ी विचित्र अनुभूति-सा होता है। वियोग के दुःखद क्षणों में ही मिलन की उत्कंठा का स्मरण हो जाता है। मिलन की आशा मिलन से कहीं अधिक सुखकर और आकर्षक होती है। अंग्रेजी के महान् कवि कीट्स ने भी इस सत्य को स्वीकार किया है। कीट्स के अनुसार जो गीत हम सुन लेते हैं निश्चय ही उसकी एक अपनी सुखद अनुभूति होती है, वह मन के तार-तार में झंकृत हो उठता है। तथापि जो रागिनी कभी सुनी या गाई न गई

और जिसकी गूंज ध्वनि से पहले उठ आई हो, उसका आकर्षण भी कम नहीं होता। सुने हुए गीत का सुख तो होता ही है किन्तु उस गीत के सुख का अनुमान ही नहीं लगाया जा सकता जो भले ही गाया या सुना न गया हो किन्तु जिसकी ध्वनि निकलने से पहले उसकी गूंज उठ आई हो। ठीक यही स्थिति मिलन और मिलन की आशा है। विछोह जीवन का एक चिरन्तन सत्य है जिसकी अनुभूति संसार में प्रत्येक व्यक्ति को कभी-न-कभी अवश्य होती है। यह विछोह अथवा अलगाव प्रिय और प्रेमी में ही नहीं होता, इसका क्षेत्र तो अनन्त है। कई बार साध्य और साधन के बीच, आत्मा-परमात्मा के बीच, वाणी और आंखों के बीच, मन और आत्मा के बीच इस प्रकार की दूरी का अनुभव होता है। मनुष्य का साध्य कुछ होता है, साधन उपलब्ध नहीं हो पाते और साध्य की पूर्ति नहीं हो पाती। जीवात्मा अनन्तकाल से परमात्मा के मिलन के लिए लालायित बनी हुई है किन्तु कब मिल पाई है। इस प्रकार विछोह की दु:खद अनुभूति जीवन का एक अनिवार्य अंग है, जीवन भी तो अपने आप में केवल सुखों का विस्तार नहीं है, उसमें दु:ख अवश्य जुड़े रहते हैं। विछोह की यह दु:खद अनुभूति दु:खद होते हुए भी कल्याणकारी है क्योंकि इसके कारण मनुष्य और ऊंचा उठता है, उसे निराशा नहीं होती अपितु वह जीने की प्रेरणा ग्रहण करता है। वियोगजन्य पीड़ा मनुष्य को ऊंचा उठाती है, उदात्त बनाती है, नीचे नहीं गिराती। निश्चय ही बिछुड़न की इस पीड़ा का आनन्द उठाने के लिए ही कालिदास के मेघदूत का मेघ यहां रुका होगा। यहां रुक कर उसे सोन और नर्मदा के विछोह की दु:खद अनुभूति से जीने की प्रेरणा मिली होगी, मिलन की आशा प्राप्त हुई होगी।

विशेष : प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने सोन और नर्मदा के प्रसंग का वर्णन करके मानव-जीवन में विछोह की अनिवार्यता प्रमाणित की है। प्रस्तुत पंक्तियां लेखक के हृदय की संवेदनशीलता की परिचायक हैं।

"कपिलधारा नर्मदा का सर्वप्रथम प्रपात है, लगभग सौ फीट ऊंचा और आम-तौर से बरसात के अलावा शेष महीनों में दो धाराओं में विभाजित है। प्रपात के नीचे कुण्ड में जाने के लिए घुमावदार रास्ता है और प्रपात के ठीक नीचे नर्मदा की शक्ति का पात वहन करने के लिए स्नानार्थियों की अपार भीड़ लगी रहती है। उसमें भी विशेष रूप से एक क्षीणतम धारा के नीचे यह परीक्षा की जाती है कि जिसके ऊपर वह धारा न पड़े वह सौ-सौ जनम में भी तर नहीं सकता। रास्ता

बहुत ही ऊबड़-खाबड़, बड़े-बड़े पत्थरों के ढोंकों पर फिसलन वाला है, पर श्रद्धा और धारा को शिव की भांति सिर पर ओढ़ने की प्रबल उत्कंठा इन बाधाओं को नगण्य कर देती है। कपिलधारा के बाद ही कम गहरा, पर अधिक फैला दूसरा प्रपात दुग्धधारा है और इसका रास्ता अधिक सुकर है। दोनों स्थानों पर हम लोगों ने अत्यन्त तृप्त होकर स्नान किया। साथ ही महिलाओं में एक तो शरीर के भार से और उस भार से भी अधिक अपार भय के भार से दर्शक-मात्र बनी रही, दूसरी ने किसी प्रकार बहुत हिम्मत दिलाने पर और धर्म के संचय के मोह से कपिलधारा की विषम धार के नीचे दो-तीन मिनट जल की शर-वर्षा सही और तीसरी ने अत्यन्त उछाह और उमंगपूर्वक विशुद्ध ग्राम्य उच्छलता के साथ बार-बार बरजने पर भी नर्मदा की सारी शक्ति अपने में भर लेने की दिलावरी दिखलाई और इन सबसे अधिक उन्मुक्त और उन्मोहित भाव से एक अन्य जोड़ी ने फोटो खिंचवाते-खिंचवाते स्नान किया और इस जोड़ी की सहज प्रेम-साधना की हम सबने नतमस्तक होकर वन्दना की।"

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियां श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह में संकलित 'अमरकण्टक की सालती स्मृति' नामक निबन्ध से उद्धृत की गई हैं जिनमें लेखक ने अमरकण्टक के रास्ते में पड़ने वाले कपिलधारा नामक प्रपात का वर्णन किया है।

व्याख्या : कपिलधारा की शोभा और महत्ता का वर्णन करते हुए लेखक कह रहा है कि "कपिलधारा नर्मदा का सबसे पहला प्रपात है। यह प्रपात लगभग एक सौ फीट ऊंचाई पर स्थित है। वर्षा ऋतु में तो इस प्रपात से एक ही जलधारा गिरती है अन्यथा दो जलधाराएं देखने में आती हैं। प्रपात के ठीक नीचे कुण्ड में जाने का मार्ग है। ऐसी मान्यता है कि कपिलधारा के नीचे स्नान करने की विशेष महिमा होती है। कदाचित इसी कारण कपिलधारा से गिरने वाली जलधारा में स्नान करने के इच्छुक व्यक्तियों की बहुत बड़ी भीड़ लगी रहती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जिस व्यक्ति को इस जलधारा में स्नान करने का अवसर नहीं मिलता उसके सौ-सौ जन्म बेकार हो जाते हैं। कपिलधारा में स्नान करने की महत्ता के कारण रास्ते की दुर्गमता कोई विशेष अर्थ नहीं रखती है और यात्री बड़े उत्साह के साथ वहां तक पहुंच जाते हैं। स्नानार्थियों में एक ओर तो कपिलधारा के प्रति श्रद्धा का भाव रहता है। दूसरे उन्हें लगता है कि उस जल-

धारा के ठीक नीचे स्नान करने पर वे भी मानो शिव की भांति जलधारा को सिर पर ओढ़ लेंगे। इसके बाद दुग्धधारा नाम का एक अन्य प्रपात भी है जो कि गहराई में कम किन्तु विस्तार में अधिक है। दुग्धधारा प्रपात तक पहुंचने का मार्ग प्रायः सपाट है। हम लोगों ने दोनों प्रपातों के नीचे जी-भर कर स्नान किया। हमारे साथ आई हुई महिलाओं में से एक तो केवल दर्शक बनी रही। संभवतः वह प्रपात से गिरने वाली तेज जलधारा को देककर घबरा गई थी। एक अन्य महिला को जब हमने कपिलधारा में स्नान करने के पुण्य की बात बताई तो वह पुण्य कमाने के लिए और हमारे ढांढस बंधाने पर दो-तीन मिनट तक उस जलधारा के नीचे स्नान करती रही। हमारे साथ आई तीसरी महिला बहुत ही उत्साही थी और वह पूरी उमंग के साथ जलधारा में स्नान करती रही। उसका उत्साह देखकर तो ऐसा लगता था मानो सारा पुण्य वही कमा लेना चाहती है। एक अन्य युगल ने तो स्नान करते हुए फोटो भी खिचवाए। जिसका उत्साह देखकर हमने भी उनकी प्रशंसा की।

विशेष : उक्त गद्यांश की अन्तिम पंक्तियों में लेखक ने भारतीय नारी की धर्मभीरु प्रकृति का वर्णन किया है जिससे यह पता चलता है कि लेखक को नारा-मनोविज्ञान की अच्छी समझ है।

"वैसे हमारे साथ एक मित्र ऐसे थे जो लोक-जीवन से अधिक लोकगीतों के संग्रही थे और कोई भूखा हो, प्यासा हो, मरता हो, जीता हो, वह यह समझते थे कि हर एक बनवासी और हर एक ग्रामवासी चौबीस घण्टे बाबू लोगों को गाना सुनाने के लिए बना है और बेचारे बारह-चौदह कोस चलकर थके हुए कुछ कच्चा-पक्का सेंकने के लिए तैयारी कर रहे थे कि इतने में मेरे मित्र ने अनुरोध किया कि गाना सुनाओ। खैर, उन्होंने तो नहीं लेकिन उनके साथ के दो-चार बच्चों ने इसी बीच में भूख के कारण जो विकट रागिनी छेड़ी और उनके अभिभावकों ने भी आग जलाना छोड़कर उनको मारने-पीटने और रागिनी को और तार-स्वर देने में सहायता पहुंचायी तो हमारे मित्र ने भी कान मूंदा और कहा कि अब चलना चाहिए। अगत्या हम लोग मुड़े।"

(पृष्ठ १४)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह से संकलित 'अमरकण्टक की सालती

स्मृति' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने अपने एक मित्र के स्वभाव की विचित्रता पर तीखा व्यंग्य किया है क्योंकि उसके ये मित्र लोक-जीवन से अधिक लोकगीतों के संग्रही थे।

व्याख्या : लेखक कह रहा है कि "हमारे एक ऐसे मित्र थे जिन्हें लोक-जीवन में बहुत रुचि थी। तथापि वे लोक-जीवन से कहीं अधिक रुचि लोकगीतों के संग्रह में लेते थे। भाव यह है कि कहने को तो मेरे वे मित्र लोक-जीवन के उपासक थे किन्तु उनकी यह उपासना मुखौटा मात्र थी। लोकगीतों के संग्रह के पीछे वे इतने दीवाने थे कि चाहे कोई भूखा हो या प्यासा हो, उन्हें बस लोकगीत सुनने की ही धुन थी। उनके मन में एक बहुत बड़ा भ्रम यह था कि प्रत्येक बनवासी शहरी बाबू को लोकगीत सुनाकर धन्य हो जाता है। उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं थी कि ये बनवासी भूखे या प्यासे तो नहीं हैं। बनवासियों का यह दल बारह-चौदह कोस पैदल चलकर आया था और इस कारण स्वभावतः ये लोग थके होने के साथ-साथ भूखे-प्यासे भी थे। मेरे उस मित्र को लोकगीत सुनने की धुन सवार थी और उधर ये बनवासी कुछ कच्चा-पक्का सेंकने तथा अपना और अपने साथ आए बच्चों का पेट भरने की तैयारी में थे। मेरे मित्र को अपनी धुन थी अतः उन्होंने बनवासियों को कोई गीत सुनाने का आग्रह किया। ऐसी स्थिति में वे बेचारे कोई भी गीत सुनाने के मूड में नहीं थे क्योंकि काफी दूर की पैदल यात्रा के बाद ये लोग बुरी तरह थके हुए थे। फलतः मेरे मित्र के गीत सुनाने का आग्रह बेकार रहा बल्कि उनके आग्रह का असर यह हुआ कि बड़े लोग चुप रहे किन्तु उनके साथ आए छोटे बच्चों ने रोना शुरू कर दिया। उधर बड़े लोगों ने अपना खाना पकाने का कार्यक्रम छोड़कर इन बच्चों को पीटना आरम्भ कर दिया और इस प्रकार मेरे मित्र की लोक-गीत सुनने की इच्छा पूरी नहीं हो सकी। मेरे मित्र को अपनी भूल का ज्ञान हुआ और अब उन्होंने वापस चलने का निश्चय किया।

विशेष : प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने ऐसे व्यक्तियों के ऊपर तीखा व्यंग्य किया है जो कि लोकजीवन में तो रुचि रखते हैं किन्तु ऐसा जीवन जीने वाले असहाय व्यक्तियों के दुःख-दर्द को समझने के लिए संवेदनशील हृदय नहीं रखते। प्रस्तुत प्रसंग में लेखक ने अपने जिस मित्र का उल्लेख किया है, वह भी लोकजीवन का इसी प्रकार अध्येता है।

"हम लोग भी जब यहां आए थे तो उसे अमरकण्टक से अधिक आम्रकूट

समझकर आए थे और आम का पेड़ देखने को तो मिले लेकिन दो-तीन दिनों में ही जो सत्संग हुआ और सतसंग के अलावा स्काउट रैली में जो दूसरी चीजें देखने को मिलीं, वे आम्रकूट की वृश्चिक बन गईं। सुना है कि आम की गन्ध बिच्छू के लिए सम्मोहन है पर स्वयं बिच्छू से भी अधिक उसका प्रभाव साहित्य-शास्त्रियों ने माना है और तभी अनंग की प्रत्यंचा के पंच बाणों में सबसे प्रथम स्थान आम को ही मिला है।"

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियां श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह में संकलित 'अमरकण्टक की सालती स्मृति' नामक निबन्ध से उद्धृत की गई हैं जिनमें लेखक ने अमरकण्टक को आम्रकूट समझ लेने का उल्लेख किया है।

व्याख्या : लेखक कह रहा है कि "जब हम लोग अमरकण्टक आए थे तो यही समझकर आए थे कि हम अमरकण्टक के स्थान आम्रकूट जा रहे हैं। तथापि वहां आम के पेड़ अधिक देखने को नहीं मिले। तथापि दो तीन-दिन के इस प्रवास तथा स्काउट रैली देखने के बाद हमें लगा कि वे सभी वस्तुएं आम्रकूट के लिए बिच्छू का-सा सम्मोहन बन गईं। भाव यह है कि जिस प्रकार आम की गंध पर बिच्छू सम्मोहित हो जाता है ठीक उसी प्रकार हमारा दो-तीन दिन का प्रवास और जो कुछ हमने वहां देखा, वह सब अत्यन्त मनमोहक था। ऐसा माना जाता है कि आम की गंध पाकर बिच्छू मोहित हो जाता है और वह उसी की ओर खिंचा चला आता है। आम की गंध का प्रभाव केवल बिच्छू तक सीमित नहीं होता बल्कि सच तो यह है कि उसका प्रभाव साहित्यशास्त्रियों पर कहीं अधिक पड़ता है। साहित्य में प्राय: कामदेव का और उनकी प्रत्यंचा के पांच बाणों का उल्लेख मिलता है। कामदेव के इन पांच बाणों में सबसे पहला स्थान आम को प्राप्त हुआ है जो कि इस बात का परिचायक है कि आम की गंध का प्रभाव साहित्यशास्त्रियों पर काफी अधिक पड़ता है। कदाचित हम पर भी ऐसा प्रभाव रहा होगा क्योंकि हम भी अमकरण्टक को आम्रकूट समझकर आए थे। दूसरे शब्दों में, हम पर भी आम की गंध का प्रभाव पड़ा था, हम भी बिच्छू की तरह आम की गंध में खिंचे हुए इस यात्रा पर निकल पड़े थे।

"दूसरे दिन हम लोग सोनमुड़ा देखने गए। देखा, एक ढाल है। ढाल के ऊपर एक छोटा-सा बुलबुला है जिसमें से कुछ पानी के बुलबुले निकलते रहते हैं

ओर निकल करके उस ढाल के नीचे कहीं विलीन हो जाते हैं, आंखों को कम-से-कम नहीं ही दिखाई पड़ता पर इसी को कहते हैं सोनमुड़ा, सोन का शीर्ष। सोन कैसे इस पथ पर बहुत दूर तक दिखाई नहीं पड़ता, लोग कहते हैं कि वह रास्ता प्रमाद में भूला या प्रेम के गर्व से उन्माद में भूला, पर आज भी पहली वर्षा हो जाय तो जो एक तन-मन को पागल कर देने वाला श्यामल प्रसार क्षितिज तक लहराता दिखता है, उसमें योगी का मन भी पागल हो जाएगा। हां, यह पगला देने वाली शोभा बिजली की कौंध नहीं है, दामिनी की तड़पन भी नहीं है, आधी रात में उठने वाली कुररी की पुकार नहीं है और क्षण-भर में सागर को हिमालय का रूप देने वाली पूर्णिमा का रजतमय ज्वार नहीं है; यह स्थित अविलक्षण, सहज और शाश्वत सौन्दर्य का सम्मान है जिसमें विस्मय के आनन्द का एक अपूर्व क्षण चाहे न हो पर इसमें प्रौढ़ हृदय की उस परिपक्व रसानुभूति की प्राप्ति है जो कालिदास के दुष्यंत या हर्ष के उदयन या बाण के पुण्डरीक की नहीं बल्कि भवभूति के राम और वह भी उत्तर रामचरित के राम की निजी सम्पत्ति है।"

(पृष्ठ १६)

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियां श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह में संकलित 'अमरकण्टक की सालती स्मृति' नामक निबन्ध से उद्धृत की गई हैं जिनमें लेखक ने सोनमुड़ा के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन किया है।

व्याख्या : लेखक कह रहा है कि "अगले दिन हम लोग सोनमुड़ा देखने के लिए गए। सोनमुड़ा एक ढाल की तरह है जिसके ऊपर की तरफ तो पानी का एक छोटा-सा बुलबुला दिखाई देता है जिसमें से पानी के बहुत से बुल्ले निकलते दीखते है। पानी के ये बुल्ले सोनमुड़ा ढाल के नीचे जाकर कहीं विलीन हो जाते हैं अर्थात् दीख नहीं पड़ते। इसी ढाल का नाम सोनमुडा अर्थात् सोन का शीर्ष रखा गया है। वैसे इस स्थल से सोन दिखाई नहीं देता, दूर-दूर तक सोन के दर्शन नहीं होते। यह रास्ता उपेक्षित-सा बना हुआ है। कदाचित इसीलिए लोग इस रास्ते को अपने अहंकार में भूला हुआ मानते हैं। यह भी हो सकता है कि यह रास्ता प्रेम के पागल-पन में खोया हुआ हो। फिर भी यदि इस उपेक्षित रास्ते पर वर्षा की पहली बूंद गिर पड़े तो यह चहक उठता है, इसकी धरती की सोंधी गंध दूर-दूर तक फैल जाती है। वर्षा के कारण आकाश में कालापन घिर आता है और यह श्यामल

आकाश अपना अलग आकर्षण रखता है। वर्षा होने पर समूचे वातावरण में जो श्यामलता घिर आती है, वह अपने आप में इतनी सम्मोहक होती है कि उसे देखकर संसार से विरक्त रहने वाले योगी का हृदय भी उन्मत्त हो जाय। तथापि यह सम्मोहन न तो बिजली की कौंध का है, न रात को दीखने वाली दामिनी का। आधी रात के समय कुररी का जो मधुर स्वर सुनाई देता है—यह सौन्दर्य उसका भी नहीं है। यह सौन्दर्य पूरे चंद्रमा वाली रात को दीखने वाली ज्योत्सना का भी नहीं है जिसके कारण सागर की लहरें हिमालय की ऊंचाइयों का स्पर्श करती दीखती हैं। यह सौन्दर्य इस भूमि का सच्चा सहज सौन्दर्य है जो कि शाश्वत और अविलक्षण है। इस अनन्त सौन्दर्य राशि को देखकर दर्शक के मन में विस्मय का भाव भले ही न आए किन्तु एक सहृदय कवि के लिए उस सौन्दर्य में अद्भुत सम्मोहन रहता है। प्रकृति का यह अनन्त सौन्दर्य संसार की श्रेष्ठतम साहित्यिक कृतियों का प्रेरणा-स्रोत रहा है। इस अनन्त सौन्दर्य को देखकर प्रौढ़ हृदय को परिपक्व रसानुभूति का आनन्द प्राप्त हो जाता है। भवभूति के राम और वह भी उत्तर रामचरित के राम की कल्पना के मूल में प्रकृति का यही अनन्त सौन्दर्य रहा होगा। कालिदास के दुष्यन्त, हर्ष के उदयन और बाण के पुण्डरीक की चरित-सृष्टियों में भी इसी प्रकृति सौन्दर्य की प्रेरणा रही होगी।

विशेष : प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने सोनमुड़ा के प्रकृति-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कालिदास, हर्ष, बाण और भवभूति सरीखे महान कवियों का नामोल्लेख करके समूचे प्रसंग को एक साहित्यिक रंग प्रदान कर दिया है। यह विशेषता लेखक की निबन्ध-शैली की अन्यतम पहचान है।

मेघदूत का संदेश : सारांश

महाकवि कालिदास द्वारा विरचित 'मेघदूत' नामक काव्य की प्रशंसा में लिखे गए इस निबन्ध में लेखक ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मेघदूत का वास्तविक महत्त्व उसमें वर्णित घटनाक्रम में नहीं अपितु लोकमंगल के उस पुण्य लक्ष्य में निहित है जो कि किसी भी सत्साहित्य की अन्यतम पहचान होती है। कालिदास के 'मेघदूत' की भांति ही स्काटलैंड में कवि बर्न्स की कृतियों को भी परम आदर भाव के साथ देखा जाता है। कवि बर्न्स की महत्ता भी इसलिए नहीं है कि उन्होंने स्काटलैंडवासियों के लिए किसी मनोरंजन अथवा ऐतिहासिक घटनाक्रम को संजोया हो अथवा स्काटलैंड में रहने वाली जनता को किसी महान युद्ध के लिए

प्रेरित किया हो। कवि बर्न्स का वास्तविक आदर इसलिए है क्योंकि 'वह स्काटों की प्रकृति और स्काटलैंड की धरती की प्रकृति का सामंजस्य स्थापित करने में सफल हुआ था, उसने दोनों की आत्मा पहचानी थी और उसकी प्रत्येक काव्य पंक्ति उस पहचान के संस्पर्श से पुलकित है।' इसी प्रकार कालिदासकृत मेघदूत में भी किसी अश्वमेधी तथा पराक्रमी राजा की विजयगाथा का वर्णन नहीं है बल्कि उसमें समूचे राष्ट्र की भौगोलिक और सांस्कृतिक चेतना की पुंजीभूत संपदा विद्यमान है। मेघदूत के संदेश के रूप में निम्नलिखित पंक्तितां उद्धृत की जा सकती हैं—

'मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोग:'

अर्थात् क्षणमात्र के लिए भी जड़ या चेतन किसी भी जगत में दो संवादी तत्त्वों का विश्लेष न हो। कालिदास के मेघदूत ने हजारों कोसों की यह दूरी तय करके केवल विंध्य और हिमालय के एकीकरण का ही प्रयास नहीं किया है अपितु सांसारिक प्रेम-साधना और आध्यात्मिक भक्ति के बीच तादात्म्य भी स्थापित किया है। मैंने मेघदूत की कथा को कई दृष्टियों से पढ़ा है, इसे शुद्ध प्रेम-कहानी के रूप में और पारमार्थिक शिव-साधना के प्रेम की कहानी के रूप में—दोनों ही तरह से पढ़ा है। मेघदूत में मुझे जहां एक ओर भारतीय जीवन के स्वस्थ दर्शन की छाया दिखाई पड़ती है वहां इतिहास की मधुर गूंज भी सुनाई पड़ी है। मेघदूत की सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि इसमें यथार्थ और आदर्श के बीच, कल्पना और यथातथ्य के बीच, इतिहास और भूगोल के बीच, नगरों के आधुनिक और गांवों के निर्व्याज जीवन के बीच एक अद्भुत तादात्म्य दिखाई पड़ता है। मेघदूत के वर्ण्य विषय को लेकर तरह-तरह के विचार प्रस्तुत किए जा सकते हैं, किन्तु सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मेघदूत का मूल स्वर मंगलसृष्टि का है। लेखक के शब्दों में "मेघदूत उस व्यापक रूप से प्रवहमान जनोल्लास की वर्षा करता है जिसकी प्यास धरती को बराबर लगी रहती है और जिसकी किसी भी मात्रा से धरती कभी भी अघा नहीं सकती।" लेखक पुनः कहता है कि 'मेघदूत' के वास्तविक संदेश को समझने के लिए एक विशाल हृदय की आवश्यकता है। हमें यह समझना होगा कि 'मेघदूत' में किसी शापग्रस्त प्रवासी यक्ष की विरह-गाथा का ही वर्णन नहीं, अपितु उसमें राष्ट्र के इतिहास, भूगोल, जनजीवन, संस्कृति, विज्ञान और प्रकृति के ऐसे सामान्य भावलोक की सृष्टि हुई है कि प्रत्येक व्यक्ति के मन में राष्ट्र के प्रति अनुराग सहज ही उत्पन्न हो जाता है। स्वभावतः

ऐसा होने पर राष्ट्र व्यक्ति के जीवन के भीतर बहुत गहरा समा जाता है और किसी भी श्रेष्ठ साहित्यिक कृति की इससे बढ़कर उपलब्धि क्या हो सकती है।

'मेघदूत' के सम्बन्ध में यह स्पष्ट रूप से समझ लिया जाना चाहिए कि भारतीय साहित्य की यह ऐसी अन्यतम कृति है जिसमें हमारा राष्ट्रीय जीवन अपनी पूरी समग्रता के साथ चित्रित हुआ है। ऐसा प्रश्न उठाया जा सकता है कि 'मेघदूत में वर्णित स्त्री-पुरुष के ऐहिक प्रेम के उद्दाम विलास से राष्ट्रीयता का हित क्योंकर सध सकता है? शापग्रस्त यक्ष की विरह-व्यथा से राष्ट्रीयता का क्या उपकार हो सकता है?" इस प्रश्न का उत्तर देते हुए लेखक कहता है कि "इसका उत्तर देना आज के बाह्य नैतिकवादी युग के मानों को देखते हुए बहुत कठिन है, पर इस देश की प्रकृति जिस स्वस्थ उपभोग के बिना, दूसरे शब्दों में जिस सौभाग्य के बिना, ऐश्वर्य और सौकर्म के बावजद वध्या मानी जाती रही है और इसलिए उसका जीवन भी खण्डित माना जाता रहा है, उसमें यदि अकुण्ठा और अकृत्रिम निर्व्याज स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध की स्थापना करायी जाती है तो वह सम्पूर्ण समाज के मंगल के लिए है, केवल व्यक्ति के क्षणिक सुख के लिए नहीं।" मेघदूत में वर्णित कथाक्रम का विश्लेषण करते हुए लेखक कहता है कि "शिव की अवज्ञा एक प्रकार का प्रमाद था जिसका परिशोध किए जाने के लिए ही मेघ द्वारा संदेश प्रेषण किया गया है। भगवान शिव वस्तुतः राम के आराध्य हैं और जहा एक ओर श्रीराम मानव की कल्याण-साधन मे मग्न हैं वहा वे शिव की साधना भी करते हैं। उनकी यह साधना अपने आप में इतनी श्रेय है कि उसके समक्ष स्वयं भगवान शिव भी फीके दीखते हैं। हमारे साहित्य में देवताओ की भूल का उद्धार मानव-शरीर से कराने की एक सुदीर्घ परम्परा रही है और मेघदूत में इसी परम्परा का निर्वाह हुआ है। कालिदास ने 'मेघदूत' में जिस शिव की कल्पना संजोयी है, वह गतिशील मंगल का संचित रूप है। स्वभावतः उसकी प्राप्ति के लिए कवि ने मेघ को माध्यम चुना है जिसमें गतिशीलता, व्यापकता के साथ-साथ संयत द्रुतिशीलता भी है। इस माध्यम की सबसे बढ़कर बात यह है कि उसमें धरती की तृप्ति, जल का बीज, तेज की रेख, वायु की चेतना, आकाश के विस्तार, मन की चंचलता, बुद्धि की पिपासा और अहंकार की स्थिति—सभी तत्त्वों का एक साथ समाहार हुआ है। मेघदूत के कवि ने भूमि, जल, अनल, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—इन आठों प्रकृतियों को बांधकर रखा है।" मेघदूत के कवि के शब्दों में—

भूमिरापोऽनलो वायुः खमनो बुद्धिरेव च
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।

मेघदूत में कवि ने मेघ की जो आध्यात्मिक व्याख्या उपर्युक्त पंक्तियों में की है, वह सामान्यजन के लिए क्लिष्ट हो सकती है किन्तु वे भी इतनी सीधी-सी बात तो समझ सकते हैं कि धरती पर बरसने वाले मेघ खेतों में काम करने वाले किसानों और महलों में नरम मखमली गद्दों की सेज विछाने वाले रसिक युगलों के समान रूप से आश्वासन और पूर्ण कामना का वाहक बनकर आते हैं। कालिदासकृत 'मेघदूत' में लौकिक और आध्यात्मिक भूमिकाओं का एक साथ निर्वाह हुआ है। विशेष बात यह है कि कवि ने एकक्षण को भी लोक को नहीं भुलाया है। संस्कृत के समग्र साहित्य में यह विशेषता दीखती है। कालिदास ने तो अपने प्रत्येक ग्रंथ के आरम्भ में ही जगत की वन्दना की है, भले ही वह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष से की गई है। मेघदूत मे कवि ने कहीं-कहीं मनुष्योचित दुर्बलताओं का वर्णन भी किया है किन्तु उन दुर्बलताओं के परिताप में भी एक शीतलता का आभास होता है। ऐसे [illegible] त [illegible] उद्देश्य यह रहा है कि मनुष्य [illegible] दुर्बलता अथवा उससे उत्पन्न दु[illegible] भी प्रत्यक्ष अ[illegible]यक्षत [illegible]गलक [illegible] लिए अ[illegible]ह [illegible]। लेखक के शब्दों म[illegible] दुर्बल से [illegible]ह औ[illegible] गहन से [illegible] दुःख का क्षण भी चराचर विश्व के मंगल और आनन्द की आराधना करने के लिए क्षम हो सके जिससे उसका दुःख भी विश्व के आनन्द की एक कड़ी बन जाय।

लेखक के अनुसार हमारे अनेक कवि समाज की मूल आनन्द वृत्ति से अनभिज्ञ होते हैं और इसीलिए उनके काव्यों की विरहिणी नायिकाएं समाज-सुधार के दिखाऊ साधन अपनाते हुए कभी श्रमिकों की नेत्री बन जाती हैं तो कभी नर्स या परिचारिका का बाना धारण कर लेती हैं। ऐसे कवि यह मानकर चलते हैं कि आनन्द एक प्रकार का अभाव होता है और इसीलिए वे पीड़ा के साथ गहरी सहानुभूति संजो लेते हैं। वे सम्भवतः यह मानने को ही तैयार नहीं होते कि ऐसा भी साधन हो सकता है जबकि पीड़ा का बोध ही न हो और उसकी भी साकार उपासना की जा सकती है। ऐसे कवि विश्व के उत्सव में, दूसरों के उल्लास में हृदय नहीं मिला पाते। इसी प्रकार सामूहिक गान में अपना स्वर मिला पाना भी ऐसे लोगों के लिए कठिन हो जाता है। प्रायः देखने में आता है कि ऐसे विसम्वादी

स्वर वाले व्यक्तियों का प्राधान्य होता है अथवा ऐसे समष्टिवादियों का बोलबाला रहता है जो समष्टि के भीतर नवचेतना ही नहीं फूंकना चाहते। वे चाहते हैं कि समष्टि में जड़ता ही बनी रहे जिससे वे समष्टि से विभिन्न प्रकार के लाभ प्राप्त कर सकें। आज के वातावरण में जो रिक्तता सर्वत्र दीखती है, उसे कालिदास के काव्यों में विद्यमान गौरव की पूर्णता से ही भरा जा सकता है। आज हमें सर्वत्र अनास्था और अविश्वास दीख पड़ता है जिसे वही प्रत्यय दिए जाने की आवश्यकता है जो मेघदूत के मेघ, वृक्ष और पर्वत देते हैं। आज हमें एक ऐसे पथ के खोज की लालसा है जिसमें न तो पलायन हो, न कोई आत्मसंकोच हो, न चोर-डाकू का आतंक हो। ऐसा सुगम, सीधा-सा चौरस रास्ता कहां मिलता है। यही कारण है कि कहीं तो आज का मनुष्य अतिशय दुःखों के कारण संसार से पलायन की सोचता है या संसार में केवल छोटे-मोटे सुखों में लिप्त रहता है। उसे ऐसा मार्ग नहीं दीखता जिसमें दूर-दूर तक उन्मुक्त आनन्द की गंगा का फेनिल मुक्तहास दीखता हो अथवा प्रिय की कुशलता के समाचार में मिलन के सुख की प्राप्ति होती हो। ऐसे मार्ग की प्रतिष्ठा कालिदास की काव्यकृतियों में सहज रूप से प्रतिष्ठित है जिसकी आधारभूमि मंगल-भावना से इतर कुछ भी नहीं है। कवि कालिदास के मेघदूत का मूल संदेश यही है। उसमें ऐसे सहज चौरास्ते की पहचान है जिसमें आधुनिक जीवन में व्याप्त कुण्ठा, अतृप्ति, असन्तोष, अरुचि, विरक्ति, कुढ़न आर ईर्ष्या से सर्वथा अछूता समस्त सात्विक चित्रवृत्तियों का समागम दीखता है। लेखक के शब्दों में, "पथ में नदियां हैं, कूल हैं, वन हैं, वन की छांह हैं, खेत हैं, खेत की गन्ध है, मन्दिर हैं, मन्दिरों में मंगल ध्वनि है, शैशव है, वात्सल्य उमगाने वाली अठखेलियां हैं, तरुणाई है, तरुणाई का विलास है, बुढ़ापा है, बुढ़ापे का कथा रस है, सौन्दर्य है, सौन्दर्य का सुहाग है, कला है, कला में कलानिधि को छूने की उमंग के कारण अतुलित ज्वार है, भक्ति है, भक्ति में आत्मनिवेदन की पूर्णता है, स्थूल जगत है, उसमें फलफूल और पल्लव की समृद्धि है, अन्तर्जगत है, उसमें चित्त की समस्त सम्भावित चित्तवृत्तियां हैं।" लेखक के अनुसार "कालिदासकृत 'मेघदूत' में इसी भव्य और सुखद मार्ग की प्रतिष्ठा हुई है जिसे देखने के लिए एक विशेष दृष्टि, समझ की अपेक्षा रहती है। कालिदास के मेघदूत ने यह सीधा-सा रास्ता पकड़ा है जिसमें क्षयकारी पियराये अवसाद पर स्निग्ध हरियाली का रंग स्वतः चढ़ जाता है। इस महान पंथ में कहीं भी लेशमात्र आशंका नहीं है, जीवन का एक सहज उच्छल प्रवाह है, उल्लास है जो कि विनाशकारी मोह से सर्वथा अछूता है। उसमें जिन्दगी

की बरबादी नहीं दिखती। वह असफल विश्वास भी नहीं झलकता जिसके सहारे प्रेयसी के स्पर्श से गीतों को अमरत्व मिलता है। उसमें केवल एक ही स्वर सर्वत्र सुनाई पड़ता है और वह स्वर स्वस्थ जीवन की चेतना का मधुर स्वर है। विरह की पीड़ा में सौभाग्य का दर्शन करने वाला 'मेघदूत' इस समस्त चराचर सृष्टि में मंगल-भावना को पूरित करने को कृतसंकल्प है।"

'मेघदूत का यह संदेश बहुत पुराना होते हुए भी चिरनवीन है, प्रत्येक युग में वह नई अर्थवत्ता लेकर प्रकट होता है और इसी कारण आज के युग में भी उसकी सार्थकता बनी हुई है। आज भी वह नया-सा लगता है और इसका मूल कारण यही है कि उसके बीज राष्ट्रीय जीवन की अतल गहराइयों में हैं। आज तो आवश्यकता इस बात की है कि मेघदूत के उस संदेश को, अंश रूप में नहीं अपितु पूरी समग्रता के साथ आत्मसात् किया जाय। हमें देखना है कि जन-शिव की आराधना में किसी प्रकार का प्रमाद न आ जाए अन्यथा 'मेघदूत' का यह चिरन्तन स्वर अपनी सार्थकता खो देगा, राष्ट्रीय जीवन में उसकी प्रासंगिकता लुप्त हो जाएगी।

मेघदूत का संदेश : तात्विक विवेचन

'मेघदूत का संदेश' नामक निबन्ध में लेखक ने कालिदास के 'मेघदूत' नामक काव्य के प्रति एक नई दृष्टि का परिचय दिया है। प्रस्तुत निबन्ध जहां एक ओर लेखक के गहन स्वाध्याय और चिन्तन का परिचायक है वहां साहित्यिक कृतियों को एक नई दृष्टि से देखने-परखने का सच्चा और निष्ठावान प्रयास भी है। 'मेघदूत' के प्रति कवि की इस नई दृष्टि का परिचय निम्न पंक्तियों में मिलता है—"मेघदूत में किसी रघु या राम या अर्जुन की वीरगाथा नही है, किसी अश्वमेध पराक्रमी के दिग्विजय का वर्णन नहीं है यहां तक कि कोई भी ऐतहासिक आख्यान नहीं है फिर भी वह समूचे राष्ट्र की भौगोलिक और सांस्कृतिक चेतना की पुंजीभूत राशि है, जिसमें प्रत्येक युग में प्रत्येक भारतीय हृदय अपने स्निग्धतम क्षण का प्रतिबिम्ब पा सकता है, अपने जीवन की चरम मंगलमय उपलब्धि जोह सकता है और साहित्य का जो मूल लक्ष्य लोक-मंगल है, उसका अत्यंत सहज बोध्य रूप अपने हृदय में बसा सकता है।" प्रस्तुत निबन्ध सच्चे अर्थों में एक आलोचनात्मक दृष्टि, साहित्य के निष्पक्ष मूल्यांकन की एक नई पद्धति का परिचायक है। लेखक ने 'मेघदूत' के भीतर उस सहज सामान्य दृष्टि को खोजने का प्रयास किया है जो

सर्वमंगलकारी है और आधुनिक जीवन में व्याप्त अतृप्ति, असंतोष, कुंठा, ईर्ष्या, जलन, कुढ़न आदि प्रवृत्तियों में सर्वथा अछूती है। हमारे यहां के विद्वानों ने निबंध के नौ तत्त्व गिनाए हैं—रोचकता, भावात्मकता, सजीवता, संगीतात्मकता अर्थात् काव्यगुणसम्पन्नता, वैयक्तिकता, एकसूत्रता, हास्य एवं व्यंग्य का समावेश तथा कलात्मकता। निबन्ध के उक्त तत्त्वों के आधार पर 'मेघदूत का संदेश' निबन्ध की विवेचना निम्नानुसार की जा सकती है :

(क) **रोचकता** : निबन्ध में रोचकता का निर्वाह बहुत आवश्यक होता है क्योंकि रोचकता के अभाव में पाठक को निबन्ध पढ़ने का आनन्द नहीं आता। निबन्ध में प्रायः किसी विषय का विवेचन होता है और इस कारण रोचकता का महत्त्व और भी अधिक हो जाता है। विशेष रूप से गंभीर विषय पर लिखे गए निबन्धों में रोचकता का होना और भी अधिक आवश्यक हो जाता है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, इसमें लेखक ने कालिदासकृत 'मेघदूत' का एक नई दृष्टि से विवेचन किया है और इसीलिए यह निबन्ध प्रायः साहित्यिक आलोचनात्मक प्रकृति का बन पड़ा है। लेखक ने रोचकता की सृष्टि करने के लिए स्काटलैंड के कवि बर्न्स की साहित्यिक साधना का उल्लेख किया है। लेखक के शब्दों में, स्काटलैंड वाले बर्न्स को अपना राष्ट्रीय कवि मानते हैं, इसलिए नहीं कि उसने स्काटलैंड की वीरता के गीत गाए हों या स्काटलैंडनिवासियों को किसी युद्ध के लिए प्रोत्साहित किया हो या स्काटलैंड के इतिहास की कोई गाथा गाई हो, बल्कि इसलिए कि वह स्काटों की प्रकृति और स्काटलैण्ड की धरती की प्रकृति का सामंजस्य स्थापित करने में सफल हुआ था, उसने दोनों की आत्मा पहचानी थी और उसकी प्रत्येक काव्य-पंक्ति उस पहचान के संस्पर्श से पुलकित है।"

(ख) **भावात्मकता** : निबन्ध में विचारों की बोझिलता अथवा सिद्धान्तों की दुरूहता का होना एक प्रकार का दोष ही कहा जा सकता है। भावात्मकता का आशय इस बात से होता है कि उसमें केवल बुद्धिविलास ही नहीं अपितु हृदय का संस्पर्श भी होना चाहिए। पाठक को ऐसा अनुभव होना चाहिए कि लेखक उसके समक्ष अपने ज्ञान का कोष नहीं अपितु अपने हृदयस्थ भावों का कोष रख रहा है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, उसमें आद्योपान्त भावात्मकता का निर्वाह हुआ है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए, "मेघदूत को समझने के लिए बड़े विशाल हृदय की जरूरत तो है ही, लेकिन उससे भी अधिक जरूरत है इस समझ की कि मेघदूत न केवल एक शापग्रस्त प्रवासी यक्ष की विरह

कल्पना है बल्कि वह भारत के आराध्य दैवत द्वारा प्रत्येक युग के आत्मविश्लेषण की वेला में भेजा गया, आश्वासन-भरा, ममता-भरा, मंगलभरा, मधुर संदेश है, जो उस विश्लेष को अपनी परिलुप्ति में एकदम बोर देता है। प्रस्तुत निबन्ध में कवि की शैली भी भावात्मकता प्रधान रही है।

(ग) **सजीवता** : निबन्ध की एक अन्यतम विशेषता उसकी सजीवता होती है। सजीवता का आशय इस बात से है कि वर्ण्य विषय को सजीवता के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए। कई बार निबन्ध का विषय अत्यंत विचारप्रधान अथवा अत्यंत गंभीर हो सकता है। ऐसी स्थिति में सजीवता के कारण निबन्ध पठनीय बन जाता है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है लेखक ने 'मेघदूत' सम्बन्धी विवेचन में सजीवता की सृष्टि की है। इस दृष्टि से प्रस्तुत निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"ठीक यही बात मेघदूत के बारे में कही जा सकती है। मेघदूत में किसी रघु या राम या अर्जुन की वीरगाथा नहीं है; किसी अश्वमे-ध पराक्रमी के दिग्विजय का वर्णन नहीं है, यहां तक कि कोई भी ऐतिहासिक आख्यान नहीं है, फिर भी वह समूचे राष्ट्र की भौगोलिक और सांस्कृतिक चेतना की पुंजीभूत राशि है, जिसमें प्रत्येक युग में प्रत्येक भारतीय हृदय अपने स्निग्धतम क्षण का प्रतिबिम्ब पा सकता है, अपने जीवन की चरम मंगलमय उपलब्धि जोह सकता है और साहित्य का जो मूल लक्ष्य लोकमंगल है, उसका अत्यन्त सहज बोध्य रूप अपने हृदय में बसा सकता है।"

(घ) **संगीतात्मकता अर्थात् काव्यगुणसम्पन्नता** . निबन्ध में संगीतात्मकता अर्थात् काव्यगुणसम्पन्नता के निर्वाह से उसमें एक अद्भुत लालित्य और माधुर्य की सृष्टि हो जाती है। निबन्ध में काव्यगुणसम्पन्नता के दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए निम्न पंक्तियां देखिए, "आज के रीतेपन को उस गौरव की पूर्णता से ही भरा जा सकता है, जो कालिदास के काव्य में से छलक रही है। आज की अनास्था को उस प्रत्यय का आश्वासन देना है जो कालिदास के वृक्ष, मेघ और पर्वत देते हैं। आज के क्षयकारी पियराये अवसाद पर उस हरियाली का रंग चढ़ाना है जो सिद्धांगनाओं के कौतूहल की, जनपद-वधू के सरल विस्फारित दृष्टि की, पौरांगनाओं के चंचल कटाक्षपात की, शिप्रा के पवन की मधुर चाटुकारिकी, गंभीरता के उन्मुक्त आनन्द की, गंगा के फेनिल मुक्तहास की, शिव के पुंजीभूत अट्टहास की, सुर-युवतियों के कंकण-बन्धन मे मेघ के त्रास की, अलका के नववधू के प्रत्यंग में प्रत्येक ऋतु के शृंगार की, यक्ष-कन्याओं के स्वर्ग-राज से मुष्टि-निक्षेप क्रीड़ा की, अलका के

झरोखों में घुसकर जाने वाले मेघ की विडम्बना की, विरह के विनोद की, प्रिय के कुशल समाचार मे समागम-सुख की प्राप्ति की तथा सन्देशवहन की प्रत्याशा में ही कृतज्ञता स्वीकार के उपलक्ष में अखण्ड सम्मिलन की मंगलकामना की, स्निग्ध श्लामलता के प्रसार में आदि से अन्त तक लहरा रही है।"

(ङ) **वैयक्तिकता** : वैयक्तिकता का आशय लेखक के व्यक्तित्व की छाप से होता है। निबन्ध में लेखक के व्यक्तित्व की छाप अनिवार्यतः रहती है। यही वैयक्तिकता लेख और निबन्ध के बीच का अन्तर भी स्पष्ट करती है। लेख में वैयक्तिकता की छाप नहीं होती जब कि निबन्ध में यह वैयक्तिकता अवश्य ही देखी जा सकती है। व्यक्तित्व की यह छाप जहां एक ओर वर्ण्य भावों-विचारों में देखी जा सकती है, वहां भावों-विचारों की अभिव्यक्ति-शैली में भी होती है। भाषा-शैली का विवेचन 'कलात्मकता' शीर्षक के अन्तर्गत किया जाएगा। प्रस्तुत संदर्भ में 'मेघदूत का संदेश' निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए जो कि लेखक के व्यक्तित्व की सुस्पष्ट छाप लिये हुए हैं, "मैंने मेघदूत की कहानी कई दृष्टियों से कई बार पढ़ी है। शुद्ध प्रेम-कहानी के रूप में मैंने इसका आस्वादन किया है, इसकी कलात्मक अभिव्यक्ति को परखा है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के साथ इसकी पारमार्थिक शिव-साधना के प्रेम को भी समझने की कोशिश की है। भारतीय जीवन के स्वस्थ दर्शन की प्रतिच्छाया पायी है और इतिहास की एक अत्य‌न्त मधुर अनुगूंज सुनी है और प्रत्येक बार मैं सम्मोहित हो गया हूं। प्रत्येक बार मानो मेघदूत ने मनसातीत सत्य को उघार कर रख दिया है।"

(च) **एकसूत्रता** : निबन्ध में वर्ण्य विषयगत एकरूपता का निर्वाह भी आवश्यक है। यद्यपि निबन्ध में नाना प्रकार की घटनाए, भाव-विचार आदि व्यक्त किए जाते हैं फिर भी आदि से लेकर अन्त तक विषयगत एकसूत्रता अवश्य बनी रहती है। भाव और विचारगत विविधता होते हुए भी निबन्धकार इस बात का बराबर ध्यान रखता है कि मूल विषय उपेक्षित न रह जाय। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, लेखक ने कवि कालिदासकृत 'मेघदूत' के प्रति एक नई दृष्टि का परिचय दिया है। लेखक ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि 'मेघदूत' की समस्त काव्ययोजना राष्ट्रीयता की एक महान् परिभाषा के रूप में उभरी है। लेखक ने मेघदूत सम्बन्धी विवेचन करते समय विषयगता एकसूत्रता का सम्यक् निर्वाह किया है। सम्पूर्ण निबंध में लेखक ने कहीं भी सूत्र-छिन्नता नहीं आने दी है। निबन्ध

का आरम्भ तो 'मेघदूत' के साथ हुआ ही है, उसका समापन भी 'मेघदूत' सम्बन्धी विवेचन के साथ हुआ है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत निबंध की आरंभिक पंक्तियां देखिए, "मेघदूत भारत का राष्ट्रीय काव्य है। सुनकर किसी को चौंकने की जरूरत नहीं है।" इसी प्रकार निबन्ध के अंतिम पैराग्राफ की निम्न पक्तियां देखिए "मेघदूत का सन्देश बहुत पुराना है,पर प्रत्येक युग में वह वैसा ही नया और वैसा ही स्फूर्ति-दायक हैं। इसका कारण सन्देश देने वाले की साधना है या उस युग के पूर्ण पुरुष विक्रम की परछाई है। देश की प्रकृति के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग के विभ्रम-विलास के साथ दृष्टि की तन्मयता है या अमृतघट के लिए जीवन के प्रेम-समुद्र का मन्थन है, पर उस संदेश के लिए लोग आज अधिक उत्कीर्ण हैं, संदेशवाहक के प्रति युगों-युगों की कृतज्ञता की स्मृति में अधिक उद्ग्रीव हों और देश की उसकी स्वतंत्रता से विश्लेष की अवधि पूरी हो गई हो, आनन्द-मिलन की वेला आयी हो तो उस विरह के संबल मेघदूत के प्रति यज्ञ की ओर से कहीं फिर उदासीनता न आ जाय, कहीं जन-शिव की आराधना में वह प्रमाद न हो, इसके लिए यह आवश्यक होगा कि मेघदूत का संदेश बार-बार गहा जाय और अपनी समग्रता में गहा जाय, एक अंश में नहीं, तभी उसकी राष्ट्रीय जीवन में मार्थकता होगी।"

(छ) **हास्य एवं व्यंग्य का समावेश** : निबन्ध में कहीं-कहीं हास्य एवं व्यंग्य के समावेश में विचारगत बोझिलता अथवा दुरूहता नहीं आ पाती। स्वभावतः हास्य एवं व्यंग्य के सामवेश से निबन्ध में रोचकता की सृष्टि हो जाती है। दो शब्दों में कहें तो हास्य एवं व्यंग्य के प्रयोग से कुछ रसात्मकता और प्रभावा-त्मकता आ जाती है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का सम्बन्ध है,लेखक ने विशुद्ध रूप से एक साहित्यिक विषय उठाया है जिसमें हास्य के नाम पर तो कुछ भी सुलभ नही है किन्तु व्यंग्य के तीखेपन का अनुभव कहीं-कहीं हो जाता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"जो लोग रचनात्मक कार्यों और समाज सुधार के दिखाऊ साधनों के ऊपर बहुत बल देते हैं और यही सोचकर अपनी विरहिणी राधा या गोपा से नर्स या मजदूर-नेत्री का काम कराए बिना जिन्हें संतोष नहीं होता, वे सचमुच समाज की मूल आनन्दवृत्ति के बारे में घोर अज्ञान रखते हैं। वस्तुतः वे आनन्द को भी एक अभाव के रूप में ही समझते हैं और इसीलिए पीड़ा के साथ उनकी सहानुभूति गहरी होती है पर पीड़ा का बोध ही न हो ऐसा भी कोई साधन हो सकता है और उसकी साकार उपासना की जा सकती है, उसका उन्हें ज्ञान नहीं होता क्योंकि वे अपने बोध के आगे नहीं देख सकते, विश्व

के उत्सव में वे एकाकार नहीं हो सकते, दूसरो के उल्लास में उनका हृदय नहीं मिल सकता और अपनी रुचि के आगे दूसरों की रुचि में उन्हें परिष्कार नहीं दीख सकता और किसी भी सामूहिक गायन में वे अपना कंठ नहीं मिला सकते।"

(ज) **कलात्मकता** : कलात्मकता का सम्बन्ध निबन्ध के बाहरी कलेवर से होता है जिसके अधीन वर्ण्य भावों-विचारों को प्रस्तुत करने की शैली, भाषा आदि पर विचार किया जाता है। किसी भी साहित्यिक कृति की भांति ही निबन्ध के भी दो पक्ष होते हैं—अन्तरंग पक्ष और बहिरंग पक्ष। अंतरंग पक्ष के अधीन निबन्ध में वर्णित भावों-विचारों आदि पर विचार किया जाता है तो बहिरंग पक्ष के अधीन उन भावों-विचारों की प्रस्तुति-शैली का विवेचन किया जाता है। निबन्ध में शैली का बहुत अधिक महत्त्व होता है और वह अनिवार्यत: लेखक के व्यक्तित्व की पहचान होती है। इसी प्रकार भाषा भी लेखक के स्वाध्याय तथा बहुविध विषयों के ज्ञान की छाप लिये होती है। विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों की भाषा तत्सम-प्रधान और विशुद्ध रूप से साहित्यिक भाषा होती है। हां, उसमें संस्कृत भाषा-सी दुरूहता तथा समासबहुलता नहीं होती। प्रस्तुत निबन्ध की भाषा में अधिकांशत: तत्समप्रधान शब्दावली का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं उर्दू भाषा के दो-चार शब्दों का प्रयोग किया है जैसे कि हजारों, कोशिश, बराबर, जरूरत, फिरोजी, होठ, जिन्दगी, बरबादी, ईमानदारी। कहीं-कहीं लेखक ने संस्कृत भाषा के उद्धरण भी प्रस्तुत किए हैं। तथापि प्रस्तुत निबन्ध की भाषा प्राय: तत्समप्रधान रही है जिसकी एक बानगी देखिए—"कालिदास का काव्य अत्यन्त असंलक्ष्य रूप से लौकिक और आध्यात्मिक दोनों भूमिकाओं को एक साथ लेकर चलता है, यद्यपि एक क्षण के लिए भी वह लोक को नहीं विसारता क्योंकि संस्कृत का समग्र साहित्य लोक का साहित्य है और लोक के परम पुरुषार्थ से अधिक प्राप्त कराने का वह कभी भी दावा नहीं करता। उसका प्रत्येक लौकिक आनन्द परमानन्द का प्रतिबिम्ब या आभासमात्र न रहकर स्वयं परमानन्द के उद्भासित क्षण के रूप में देखा जाता है।"

प्रस्तुत निबन्ध में लेखक ने प्रसादात्मक शैली का प्रयोग किया है जिसके फल-स्वरूप एक ओर तो अर्थ-प्रतीति में कोई कठिनाई नहीं होती, दूसरे निबन्ध में रसात्मकता का भी संचार हुआ है। उदाहरण के लिए निम्न पंक्तियां देखिए—"थोड़ी देर के लिए इतनी लम्बी-चौड़ी आध्यात्मिक व्याख्या यदि हम भूल भी

जाएं तो कम-से-कम जो मेघ का स्थूल प्रभाव है, जिसके कारण वह खेतों मे काम करने वाले कृषकों और कृषक-बन्धुओं तथा महलों में फूलों की सेज बिछाने वाली रसिक जोड़ियों के लिए समान रूप से आश्वासन और पूर्ण कामना का वाहक बन-कर आता है, उनकी अमोघता तो सहज ही में समझी जा सकती है और इसी प्रकार शिव को भी उनके योगीश्वर के रूप मे समझने मे कुछ कठिनाई भी हो तो कम-से-कम शिवका जो सार्वजनिक उत्सवों के साथ एकाकार रूप जन-जन में बसा हुआ है, उसकी प्रेरणा तो सहज बोध्य हो सकती है।''

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि 'मेघदूत का संदेश' नामक निबन्ध में निबन्ध के सभी तत्त्वों का सम्यक् निर्वाह हुआ है। निबन्ध की भाषा-शैली पर लेखक के व्यक्तित्व की सुस्पष्ट छाप देखी जा सकती है। 'मेघदूत' काव्य का इतना जीवनोन्मुखी विवेचन हिन्दी में संभवतः पहली ही बार हुआ है।

महत्त्वपूर्ण स्थलों की सप्रसंग व्याख्या

''मेघदूत भारत का राष्ट्रीय काव्य है। सुनकर किसी को चौंकने की जरूरत नहीं। स्काटलैण्ड वाले बर्न्स को अपना राष्ट्रीय कवि मानते हैं, इसलिए नहीं कि उसने स्काटलैण्ड की वीरता के गीत गाये हों या स्काटलैंड निवासियों को किसी युद्ध के लिए प्रोत्साहित किया हो या स्काटलैंड के इतिहास की कोई गाथा गायी हो, बल्कि इसलिए कि वह स्काटों की प्रकृति और स्काटलैंड की धरती की प्रकृति का सामंजस्य स्थापित करने में सफल हुआ था। उसने दोनों की आत्मा पहचानी थी और उसकी प्रत्येक काव्यपंक्ति उस पहचान के संस्पर्श से पुलकित है। ठीक यही बात मेघदूत के बारे में कही जा सकती है। मेघदूत में किसी रघु या राम या अर्जुन की वीरगाथा नहीं है किसी अश्वमेध-पराक्रमी के दिग्विजय का वर्णन नहीं है, यहां तक कि कोई भी ऐतिहासिक आख्यान नहीं है, फिर भी वह समूचे राष्ट्र की भौगोलिक और सांस्कृतिक चेतना की पुंजीभूत राशि है जिसमें प्रत्येक युग में, प्रत्येक भारतीय हृदय अपने स्निग्धतम क्षण का प्रतिबिम्ब पा सकता है, अपने जीवन की चरम मंगलमय उपलब्धि जोह सकता है और साहित्य का जो मूल लक्ष्य लोक-मंगल है, उसका अत्यन्त सहज बोध्य रूप अपने हृदय में बसा सकता है।''

(पृष्ठ ५५)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का

मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह में संकलित 'मेघदूत का संदेश' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने स्काटलैंड के राष्ट्रीय कवि बर्न्स का दृष्टान्त प्रस्तुत करके 'मेघदूत' काव्य के राष्ट्रीय रंग का वर्णन किया है। लेखक के अनुसार बर्न्स की काव्यकृतियों की ही तरह 'मेघदूत' भी अपने भीतर सच्ची राष्ट्रीयता को संजोए हुए है।

व्याख्या : 'मेघदूत' के राष्ट्रीय स्वरूप का विवेचन करते हुए लेखक कह रहा है कि "कालिदासकृत 'मेघदूत' सच्चे अर्थों में भारत का एक राष्ट्रीय काव्य है और इस बात पर चौंकने का कोई औचित्य नहीं है। उदाहरण के लिए स्काटलैंड के राष्ट्रीय कवि बर्न्स की काव्यकृतियों का उल्लेख किया जा सकता है क्योंकि 'मेघदूत' की भांति ही उनके भीतर भी राष्ट्रीयता अपनी पूरी समग्रता के साथ अनुस्यूत है। स्काटलैंड में कवि बर्न्स को जो इतना अधिक आदर प्राप्त है उसका कारण यह नहीं है कि उन्होंने अपनी काव्यकृतियों में स्काटलैंड की वीरता के गीत गाए हैं, अथवा एक चारण कवि की भांति स्काटलैंड की जनता को युद्ध के प्रांगण में उतरने के लिए प्रोत्साहित किया है। कवि बर्न्स ने अपनी रचनाओं में स्काटलैंड के इतिहास की भी कोई कथा नहीं संजोयी है। एक कवि के रूप में उनकी इस अनन्य सफलता का एक मात्र रहस्य यही है कि उन्होंने स्काटलैंड की जनता के संस्कारों और वहां की धरती के बीच एक अद्भुत तादात्म्य स्थापित कर दिखाया है। बर्न्स की काव्यकृतियों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह स्काटलैंड के रहने वालों की रुचियों, विश्वासों, परम्पराओं, सांस्कृतिक रीति-रिवाजों का अद्भुत पारखी था। उसे स्काटलैंड की धरती की भी गहरी पहचान थी और इसी कारण वह स्काटलैंड के लोगों की प्रकृति और स्काटलैंड देश की प्रकृति के बीच तादात्म्य स्थापित कर सका था। ठीक ऐसी ही स्थिति कालिदासविरचित 'मेघदूत' की भी है। 'मेघदत' में भी किसी महान तथा पराक्रमी राजा की वीरगाथा अथवा किसी अश्वमेध-पराक्रमी की विजयगाथा का वर्णन नहीं मिलता। मेघदूत का कथानक भी ऐतिहासिक नहीं है किन्तु फिर भी कवि ने उसके भीतर भारत की धरती की प्रकृति और भारतवासियों की प्रकृति के बीच तादात्म्य स्थापित किया है। मेघदूत में समूचे भारत राष्ट्र की भौगोलिक और सांस्कृतिक चेतना अपनी पूरी समग्रता के साथ व्यक्त हुई है। 'मेघदूत' में हमें जिस भौगोलिक-सांस्कृतिक चेतना के दर्शन होते हैं, उसमें प्रत्येक युग में प्रत्येक भारतीय को अपने हृदय की धड़कन सुनाई पड़ सकती है। 'मेघदूत' के भीतर प्रत्येक भारतीय को अपने जीवन

का सार, अपने जीवन की चरम मंगलमय उपलब्धि मिल सकती है। इसका मूल कारण यही है कि 'मेघदूत' में भारत की भौगोलिक और सांस्कृतिक चेतना का संचित रूप विद्यमान है जिसके प्रति प्रत्येक भारतवासी स्वतः ही कुछ अपनत्व पा जाता है। कालिदासकृत मेघदूत की पहचान केवल यही नहीं है कि उसमें राष्ट्र की समूची भौगोलिक और सांस्कृतिक चेतना का समाहार हुआ है बल्कि यह भी कि उसका मूल स्वर लोककल्याण का ही स्वर है। लोकमंगल की पवित्र भावना से प्रेरित होकर लिखे गए इस महाकाव्य के यदि प्रत्येक युग में प्रत्येक भारतवासी को अपने जीवन के चरम मंगलमय रूप की प्राप्ति की राह बताई हो, यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं होना चाहिए।

विशेष : प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने कालिदासकृत 'मेघदूत' को नई दृष्टि से देखने-परखने का औचित्य सिद्ध कर दिया है और साहित्यिक कृतियों के मूल्यांकन की परम्परागत पद्धति के स्थान पर नई दृष्टि अपनाने की प्रेरणा दी है।

"जो लोग कहते हैं कि यथार्थ और आदर्श के बीच समझौता नहीं हो सकता, कल्पना और यथातथ्य में कोई जोड़ नहीं बैठाया जा सकता या इतिहास और भूगोल के बीच कोई सामंजस्य नहीं हो सकता या नगरों में परिष्कृत जीवन के साथ गांव के निर्व्याज जीवन के साथ गठबन्धन नहीं हो सकता या उद्दीपन और आलम्बन में कोई एक नहीं हो सकता, उनके लिए 'मेघदूत' एक चुनौती है।"

(पृ० ५६)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह में संकलित 'मेघदूत का सन्देश' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि 'मेघदूत' एक ऐसी गौरवपूर्ण कृति है जिसमें यथार्थ और आदर्श, कल्पना और यथातथ्य के बीच सामंजस्य स्थापित किया गया है।

व्याख्या : कालिदासकृत 'मेघदूत' के सम्बन्ध में लेखक कह रहा है कि "जो लोग यह मानते हैं कि आदर्श और यथार्थ के बीच अथवा कल्पना और यथातथ्य के बीच सामंजस्य स्थापित नहीं हो सकता उन्हें कालिदासकृत मेघदूत का अध्ययन करना चाहिए। कालिदास की इस अनुपम काव्यकृति में यथार्थ और आदर्श के बीच, इतिहास और भूगोल के बीच, नगरों और गांवों के जीवन के बीच एक सुखद

सामंजस्य स्थापित किया गया है। लेखक ने जहां आदर्श पात्रों की सृष्टि की है वहां यथार्थ को भी सामने रखा है जिससे कि आदर्श की प्राप्ति हो सके और ऐसा न लगे कि आदर्श की ऊंचाई मनुष्य की बांहों से कहीं अधिक है। इसी प्रकार मेघदूत में कल्पना के वितान तो ताने गए हैं किन्तु वह कल्पना अपने आप में वास्तविकता से बहुत दूर नहीं दीखती। इसी प्रकार कवि ने ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन इसी धरती पर किया है और इतिहास तथा भूगोल के बीच सामंजस्य स्थापित कर दिखाया है। नगरों के सजधज वाले जीवन का वर्णन करते हुए भी कवि ने ग्राम्य जीवन की सहजता को नहीं भुलाया है।"

"मेघदूत को समझने के लिए बड़े विशाल हृदय की जरूरत है ही, लेकिन उससे भी अधिक जरूरत है इस समझ की कि मेघदूत केवल एक शापित प्रवासी यक्ष की विरह-कल्पना है बल्कि वह भारत के आराध्य दैवत द्वारा प्रत्येक युग के आत्म विश्लेष की वेला मे भेजा गया आश्वासन-भरा, ममता-भरा, मंगल-भरा मधुर संदेह है जो उस विश्लेष को अपनी परिलुप्ति में एकदम बोर देता है। जबतक वह चीज नहीं समझी जाएगी, मेघदूत के चरितार्थ तक नही पहुचा जा सकता। मेघदूत की समस्त काव्ययोजना राष्ट्रीयता की एक महान परिभाषा के निर्माण मे विनियोजित हुई है जो इतिहास, सस्कृत, भूगोल जनजीवन. विज्ञान और प्रकृति की सभी सीमाओ और क्षितिज-रेखाओ के सम्मिलन भूमि का निर्माण करता हुई राष्ट्र के प्रत्येक अवयव और कण के साथ हृदय का साक्षात्कार कर देती है यह केवल चार घड़ी के लिए उत्तेजना नहीं जगाती, नसों में गरम लहू नहीं उबालती, बल्कि राष्ट्र के जितने भी घटक हो सकते हैं उनसभी के साथ ऐसा गहरा अनुराग भर देती है कि राष्ट्र व्यक्ति के जीवन का अंश बन जाता है।"

(पृष्ठ ५६-५७)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह में संकलित 'मेघदूत का संदेश' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने मेघदूत के राष्ट्रीय स्वरूप का विवेचन किया है। लेखक ने जहां एक ओर 'मेघदूत' की काव्ययोजना में राष्ट्रीयता की पहचान की है वहां 'मेघदूत' के प्रति एक नई दृष्टि अपनाने का भी आग्रह किया है।

व्याख्या : मेघदूत को समझने के लिए एक नई दृष्टि की आवश्यकता पर बल

देते हुए लेखक कह रहा है कि "मेघदूत को सच्चे रूप में समझने के लिए एक विशाल हृदय की आवश्यकता है जो कि मेघदूत में वर्णित प्रत्येक भाव-विचार और घटनाक्रम को सही परिप्रेक्ष्य में समझ सके। इसके साथ-साथ यह समझ लेना भी आवश्यक है कि मेघदूत के माध्यम से कालिदास ने केवल विरही यक्ष की अन्तर्व्यथा को ही स्वर नहीं प्रदान किया है अपितु भगवान शिव के माध्यम से एक ममतापूर्ण और मंगलमय मधुर संदेश भी प्रदान किया है। प्रत्येक युग में मेघदूत का यह मंगलमय संदेश भारत की दुखी और सत्रस्त जनता को जीवन के सुखात्मक एवं आशापूर्ण पक्ष के दर्शन कराता रहा है। मेघदूत का वास्तविक संदेश समझने के लिए इसी दृष्टि की आवश्यकता है। इस प्रसंग में यह भी स्पष्ट रूप से समझ लिया जाना चाहिए कि 'मेघदूत' में भारत की समूची राष्ट्रीयता अनुस्यूत है। भारत का इतिहास, संस्कृत भूगोल, जनजीवन, विज्ञान और प्रकृति अपने समग्र रूप में मेघदूत मे वर्णित हुई है। कदाचित् इसी कारण मेघदूत के पाठक को प्रत्येक युग मे राष्ट्रीयता के प्रत्येक कण के साथ पहचान होती रही है। 'मेघदूत' में वर्णित राष्ट्रीयता अपनी पूरी समग्रता के साथ व्यक्त हुई है जिसे भारत का पाठक सदा सदा से मन से सराहता रहा है। 'मेघदूत' में जिस राष्ट्रीयता के दर्शन होते हैं, वह केवल क्षणिक उत्तेजना जाग्रत नही करती। उसे पढ़कर-समझकर पाठक की नसों में रक्त का सचार भी नहीं होता कि वह तत्काल खडा होकर राष्ट्र की रक्षा के लि अपने प्राणों को समर्पित ने का सकल्प लेकर आगे बढ जाय। सच तो यह है कि 'मेघदूत' मे कालिदास ने जिस राष्ट्रीयता को संजोया है, वह राष्ट्रीयता के प्रत्येक अंग को अपने भीतर संजोए हुए है। 'मेघदूत' के पाठक को एक साथ भारत के इतिहास, भूगोल, जनजीवन, विज्ञान और प्रकृति के प्रति सहज ही अनुराग उत्पन्न हो जाता है और राष्ट्र उसके जीवन का अंश बन जाता है। पाठकों को राष्ट्रीयता में इस प्रकार बोर कर देने की क्षमता विरले काव्यों में देखी जा सकती है और निःस्सन्देह कालिदासकृत 'मेघदूत' की गणना ऐसे ही विरले काव्यों में की जा सकती है।

विशेष : प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि काव्य में राष्ट्रीयता का निर्वाह किस प्रकार हो सकता है। साहित्य अथवा काव्य में राष्ट्रीयता की ऐसी पहचान की दृष्टि निश्चय ही साहित्य को एक नए ढंग से देखने-परखने का निष्ठावान प्रयास कही जा सकती है।

"आज जब राष्ट्र के गौरव को पहचानने की मंगल वेला आयी है तब इसके

उपादानों का अध्ययन एक व्यापक दृष्टि से होना अत्यंत आवश्यक है और इसलिए मेघदूत के विशद अध्ययन की आज सबसे अधिक आवश्यकता है क्योंकि राष्ट्रीयता का समग्ररूप में दर्शन अकेले किसी ग्रंथ में है तो वह मेघदूत में है। कुछ लोग कह सकते हैं कि क्या उद्दाम विलास के वर्णन 'नीवी बन्धोच्छ्वास' प्रणयी के उत्संग में दुकूल के विस्रंसन, श्रृंगार सिद्ध करने वाले कल्पवृक्ष के वितान या स्वप्न में या चित्त में सम्मिलन के प्रयत्न राष्ट्रीयता के लिए उपकार कर सकते हैं और क्या वह राष्ट्रीयता काम्य होगी, इसका उत्तर देना आज के बाह्य नैतिकवादी युग के मानों को देखते हुए बहुत कठिन है, पर इस देश की प्रकृति जिस स्वस्थ उपभोग के बिना, दूसरे शब्दों में जिस सौभाग्य के बिना, ऐश्वर्य और सौकर्म के बावजूद बन्ध्या मानी जाती रही है उसमें यदि अकुण्ठित और अकृत्रिम निर्व्याज स्त्री-पुरुष सम्बन्ध की स्थापना कराई जाती है, तो वह समूचे समाज के मंगल के लिए है, केवल व्यक्ति के क्षणिक सुख के लिए नहीं।"

(पृष्ठ ५७)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह में संकलित 'मेघदूत का संदेश' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने मेघदूत में वर्णित कतिपय श्रृंगार परक प्रसंगों के सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों की आलोचना की निस्सारता व्यक्त की है। लेखक के अनुसार श्रृंगार के इन वर्णनों से भी एक अर्थ में राष्ट्रीयता का उपकार होता है।

व्याख्या : मेघदूत में वर्णित कतिपय श्रृंगारपरक प्रसंगों का विवेचन करते हुए लेखक कह रहा है कि "भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् अब ऐसा समय आ गया है जबकि भारत के गौरव की पहचान की जाय। स्वभावतः अब हमें राष्ट्रीयता के विभिन्न उपादानों को व्यापक दृष्टि से समझना होगा और इसी कारण मेघदूत को भी नए परिप्रेक्ष्य में देखे-समझे जाने की आवश्यकता है क्योंकि यही एकमात्र ऐसा ग्रंथ है जिसमें राष्ट्रीयता अपनी पूरी समग्रता के साथ चित्रित हुई है। मेघदूत ही एकमात्र ऐसी काव्यकृति है जिसमें हमारी राष्ट्रीयता के सारे अवयव, सारे घटक संजोए गए हैं। निस्सन्देह कतिपय लोगों को यह आपत्ति हो सकती है कि श्रृंगार के कतिपय मांसल दृश्यों, वस्त्रों के अनावरण आदि के प्रसंगों से राष्ट्रीयता का उपकार कैसे सम्भव हो सकता है। 'मेघदूत' में निश्चय ही श्रृंगार के कई मांसल

चित्र उभारे गए हैं और राष्ट्रीयता के संदर्भ में ऐसे चित्रों की सार्थकता को लेकर वस्तुत: आपत्ति उठाई जा सकती है। इसी से जुड़ा हुआ एक प्रश्न यह भी है कि यदि एक बार यह मान भी लिया जाय कि ऐसे श्रृंगारपरक प्रसंगों से राष्ट्रीयता का कुछ-न-कुछ उपकार अवश्य होगा तो क्या ऐसी राष्ट्रीयता श्रेय हो सकेगी अर्थात् क्या ऐसी राष्ट्रीयता हमारा लक्ष्य हो सकती है। आज के युग में नैतिकता के अर्थ बदल गए हैं, नैतिकता के नाम पर नानाविध प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं और ऐसी स्थिति में उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर दे पाना और भी अधिक दुष्कर हो जाता है। आज के युग में नैतिकता एक बाह्य तत्त्व बन गई है जिसे मनमाने ढंग से पहना और उतारा जा सकता है। तथापि हम सभी जानते हैं कि हम लोगों के जीवन में स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को लेकर भी तरह-तरह की कुंठाएं और वर्जनाएं पल रही हैं। कदाचित् इसी कारण स्त्री-पुरुष के स्वस्थ सम्बन्ध देखने को भी नहीं मिल पाते। यदि मेघदूत में वर्णित श्रृंगारपरक प्रसंगों के आधार पर हमारे यहां के स्त्री-पुरुष के बीच स्वस्थ और सुदृढ़ सम्बन्ध बनाए जा सकते हैं तो क्या ऐसा करने से राष्ट्रीयता का उपकार नहीं हो सकेगा ? क्या समाज अपेक्षतया अधिक मंगलमय पथ पर अग्रसर नहीं हो सकेगा ? क्या स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को नई अर्थवत्ता नहीं मिल सकेगी ? सच तो यह है कि 'मेघदूत' ने इस सबके लिए एक सुदृढ़ भावात्मक धरातल का निर्माण कर दिया है जो कि राष्ट्रीयता के लिए परम उपयोगी हो सकता है।

विशेष : प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने मेघदूत में वर्णित श्रृंगारिक विलास के 'अनैतिक' समझे जाने वाले चित्रों के भीतर राष्ट्रीयता को ढूंढ़ने का सफल प्रयास किया है जो कि निश्चय ही उसकी असाधारण प्रतिभा का परिचायक है।

"थोड़ी देर के लिए इतनी लम्बी-चौड़ी आध्यात्मिक व्याख्या यदि हम, भूल भी जाएं तो कम-से-कम जो मेघ का स्थूल प्रभाव है, जिसके कारण वह खेतों में काम करने वाले कृषकों और कृषक बन्धुओं तथा महलों में फूलों की सेज बिछाने वाली रसिक जोड़ियों के लिए समान रूप से आश्वासन और पूर्ण कामना का वाहक बन कर आता है, उनकी अमोघता तो सहज ही में समझी जा सकती है और इसी प्रकार शिव को भी उनके योगीश्वर के रूप में समझने में कुछ कठिनाई भी हो, तो कम-से-कम शिव का जो सार्वजनिक उत्सवों के साथ एकाकार रूप जन-मन में बसा हुआ है, उसकी प्रेरणा तो सहज बोध्य हो सकती है।"

(पृ० ५८)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक संग्रह से संकलित 'मेघदूत का संदेश' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने मेघदूत के आध्यात्मिक अर्थ की बजाय उसके व्यावहारिक और बोधगम्य अर्थ की प्रतीति कराई है।

व्याख्या : मेघदूत के व्यावहारिक पक्ष का विवेचन करते हुए लेखक कह रहा है कि मेघदूत में मेघ की जो आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है, वह सामान्य जन के लिए दुरूह हो सकती है तथापि यदि हम एक क्षण को मेघ की आध्यात्मिक व्याख्या भूल भी जाएं तो कम-से-कम उसके प्रत्यक्ष स्थूल प्रभाव को तो अवश्य स्वीकार कर सकते हैं। यह सर्वविदित है कि खेतों में दिन-रात परिश्रम करने वाले, गर्मियों में पसीना बहाने वाले और ठिठुरती सर्दियों में अधनंगे रूप से काम करने वाले कृषकों और वर्षा की मादक ऋतु में अपने ही संसार में खोए हुए प्रेमी-युगलों के लिए आकाश पर छाते हुए मेघ आशा और उत्साह का नया स्वर लेकर आते हैं। इन मेघों को देखकर किसानों को आश्वासन और प्रेमी-युगलों को पूर्ण कामना का अवसर मिल जाता है। सामान्य जीवन के इस सत्य को स्वीकार करने में किसी को भी लेशमात्र की द्विविधा नहीं हो सकती। मेघ का यह व्यावहारिक अर्थ सभी के गले उतर सकता है, उसे समझने में किसी को भी रंचमात्र कठिनाई नहीं हो सकती। ऐसी ही बात भगवान शिव की भी है। भगवान् शिव के योगीश्वर रूप को समझना टेढ़ी खीर है, सामान्य जन उसे नहीं समझ पाता। भगवान शिव का ही एक दूसरा रूप भी है जिसके दर्शन सार्वजनिक उत्सवों के समय होते हैं। जनसाधारण के लिए सिर पर जटाएं बांधे हुए, गले में सर्पों की माला धारण किए हुए शिव का रूप एक चिरपरिचित पहचान है। जन-जन के हृदय में शिव का यह रूप बहुत गहरे उतरा रहता है। मेघ और शिव के इन व्यावहारिक रूपों को समझने में किसी को कोई कठिनाई नहीं हो सकती, अतः क्यों न हम सभी इन्हीं व्यवहारिक रूपों से प्रेरणा ग्रहण करें ? आध्यात्मिक व्याख्याएं दुर्बोध हो सकती हैं किन्तु ऐसी व्यावहारिक व्याख्याएं तो निश्चय ही सहज बोध्य होती हैं।

विशेष : प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से लेखक ने भगवान शिव और आकाश में विचरण करने वाले मेघ को नए किन्तु सहज बोध्य रूप में प्रस्तुत किया है। शिव और मेघ के ये रूप विशुद्ध रूप से व्यावहारिकता के स्तर पर संजोए गए हैं अतः उनकी पहचान में तनिक भी कठिनाई नहीं हो सकती।

"जो लोग रचनात्मक कार्यों और समाज-सुधार के दिखाऊ साधनों के ऊपर बहुत बल देते हैं और यही सोचकर अपनी विरहिणी राधा या गोपा से नर्स या मजदूर-नेत्री का काम कराए बिना जिन्हें संतोष नहीं होता, वे सचमुच समाज की मूल आनन्दवृत्ति के बारे में घोर अज्ञान रखते हैं। वस्तुतः वे आनन्द को भी एक अभाव के रूप में ही समझ पाते हैं और इसीलिए पीड़ा के साथ उनकी सहानुभूति गहरी होती है, पर पीड़ा का बोध ही न हो, ऐसा कोई साधन हो सकता है और उसकी भी साकार उपासना की जा सकती है, उसका उन्हें ज्ञान नहीं होता। क्योंकि वे अपने बोध के आगे नहीं देख सकते, विश्व के उत्सव में वे एकाकार नहीं हो सकते, दूसरों के उल्लास में उनका हृदय नहीं मिल सकता और अपनी रुचि के आगे दूसरों की रुचि में उन्हें परिष्कार नहीं दिख सकता और किसी भी सामूहिक गायन में वे अपना कण्ठ नहीं मिला सकते।"

(पृष्ठ ५९)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह में संकलित 'मेघदूत का संदेश' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ऐसे कवियों, विचारकों की निन्दा कर रहा है जो कि समष्टि में कभी भी चैतन्य तत्त्व नहीं मरना चाहते।

व्याख्या : लेखक कह रहा है कि "हमारे यहां अनेक ऐसे कवि, विचारक हुए हैं जो कि रचनात्मक कार्यों और समाज-सुधारों के दिखावटी साधनों पर बहुत बल देते हैं। कदाचित् इसीलिए उनकी विरहिणी नायिकाएं भी अपने विरहजन्य दुख को सामाजिक कार्यों में मग्न रहकर भूल पाती हैं। ऐसी विरहिणी नायिकाएं कभी अस्पताल की परिचारिका बन जाती हैं अथवा मजदूरों को नेतृत्व प्रदान करके उन्हें सामाजिक-आर्थिक न्याय दिलाकर ही दम लेती हैं। इसका मूल कारण यह है कि ऐसी विरहिणी नायिकाओं का चित्रण करने वाले कवि संसार की मूल आनन्दवृत्ति को भुला बैठते हैं। वे यह मानकर चलते हैं कि आनन्द भी एक प्रकार का अभाव होता है और इसीलिए विरहजन्य पीड़ा के प्रति वे अत्यधिक सहानुभूति-शील होते हैं। उनकी समझ में यह नहीं आता कि ऐसा भी तो साधन हो सकता है कि ऐसी विरहजन्य पीड़ा ही न हो और उसकी साकार उपासना भी की जा सकती है। वे इस तथ्य को समझ ही नहीं पाते, उनकी दृष्टि इससे आगे जा ही नहीं सकती। ऐसे लोग विश्व की मूल आनन्दवृत्ति के भागीदार नहीं बन सकते,

विश्व के सुख के साथ वे अपनत्व नहीं रख पाते। दूसरों के सुख और उल्लास को देखकर उनका हृदय हर्षित नहीं हो पाता। ऐसे लोग अपने कंठ को सामूहिक गायन में नहीं मिला पाते। उन्हें अपनी रुचि से बढ़कर कोई रुचि नहीं दीखती।

"आज के पथ की खोज की लालसा को वह सीधा-सा चौरस रास्ता बतलाती है, जो मेघदूत ने पकड़ा है और जिस डगर में न कोई पलायन है, न कोई आत्म-संकोच है, न कोई चोर है, न कोई डाकू है। पथ में नदियां हैं, कूल हैं, वन हैं, वन की छांह है, खेत हैं, खेत की गन्ध है, मन्दिर हैं, मन्दिरों में मंगलध्वनि है, शैशव है, वात्सल्य उमगाने वाली अठखेलियां हैं, तरुणाई है, तरुणाई का विलास है, बुढ़ापा है, बुढ़ापे का कथा-रस है, सौन्दर्य है, सौन्दर्य का सुहाग है, कला है, कला में कलानिधि को छूने की उमंग के कारण अतुलित ज्वार है, भक्ति है, भक्ति में आत्म-निवेदन की पूर्णता है, स्थूल जगत है, उसमें फलफूल और पल्लव की समृद्धि है, अन्तर्जगत है, उसमें चित्र की समस्त संभावना सात्विक चित्तवृत्तियां हैं, कुण्ठा, अतृप्ति, अरुचि, विरक्ति, कुढ़न और जलन से एकदम अछूती।"

(पृष्ठ ६०)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह में संकलित 'मेघदूत का संदेश' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने मेघदूत के वास्तविक संदेश का वर्णन किया है।

व्याख्या : लेखक कह रहा है कि 'आज के युग में सर्वत्र एक रीतापन दीखता है और मनुष्य एक ऐसे सीधे रास्ते की खोज में है जिसमें न कोई भय हो, न आशंका। 'मेघदूत' आज के मनुष्य को ऐसे ही सीधे रास्ते की पहचान बताता है। इस डगर में कहीं कोई भय नहीं है, पलायन की चाह भी नहीं है, किसी प्रकार का संकोच भी नहीं है। 'मेघदूत' में बनाए गए पक्ष में ज़ीवन की पूर्णता है, प्रकृति का आनन्द है। इस पथ में कलकल करती नदियां हैं और उनके किनारे हैं, विस्तृत वन प्रदेश हैं और वनों की घनी छांह भी है। फसलों से लहलहाते विशालकाय खेत हैं और खेतों से उठने वाली मीठी-मीठी गंध भी है। मेघदूत का बताया हुआ यह पथ शैशव और तरुणाई की उमंगों से आपूरित है। इस पथ में जीवन अपनी पूरी समग्रता के साथ व्यक्त हुआ है। इस महान किन्तु सहज-सीधे पथ में मन्दिर हैं तो मन्दिरों से उठने वाली मंगलध्वनि भी है, शैशव का भोलापन है तो वात्सल्य की अठ-

खेलियां भी हैं, तरुणाई है तो तरुणाई की उमंग और चाव भी है। यही नहीं, इस पथ में बुढ़ापा भी है और बुढ़ापे की दुःखद कथाओं का आनन्द भी है, सौन्दर्य है तो सौन्दर्य का सौभाग्य भी है। इस पथ में कला है और कलाओं की उमंग भी है, भक्ति है और भक्ति में आत्मनिवेदन की भाव-प्रवणता भी है। इस पथ में सामान्य संसार भी है जिसमें प्रकृति की अद्भुत सम्पदा फलफूल और समृद्धि देखते ही बनती है। इन सबसे बढ़कर बात यह है कि 'मेघदूत' द्वारा इंगित पथ में ये सभी तत्त्व अपने विशुद्ध रूप में विद्यमान हैं। आज के संसार में सर्वत्र कुण्ठा, अतृप्ति और असंतोष दीखता है। भाई-भाई को देखकर सुखी नहीं हो पाता, पड़ोसी अपने पड़ोसी की समृद्धि देखकर मन-ही-मन जलता रहता है। 'मेघदूत' में बताए गए पथ में दीखने वाला सौन्दर्य, सुख, भक्ति, जगत आज के जीवन के इन सभी अभिशापों से सर्वथा मुक्त है। यह पथ अपनेआप में सर्वथा निरापद है, इसमें न तो किसी प्रकार का भय है, न आशंका है। जीवन का एक स्वस्थ एवं सहज प्रवाह इस पथ की सबसे बड़ी पहचान है।

विशेष—प्रस्तुत निबन्ध में लेखक ने मेघदूत के वास्तविक संदेश को व्यक्त किया है। सच तो यह है उक्त गद्यांश पांच-छः पृष्ठों के इस निबन्ध का सारांश है।

"मेघदूत का संदेश बहुत पुराना है, पर प्रत्येक युग में वह वैसा ही नया और वैसा ही स्फूर्तिदायक है। इसका कारण संदेश देने वाले की साधना है या उस युग के पूर्ण पुरुष विक्रम की परछाइं है, देश की प्रकृति के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग के विभ्रम-विलास के साथ दृष्टि की तन्मयता है या अमृतघट के लिए जीवन के प्रेम-समुद्र का मन्थन है, पर उस सन्देश के लिए आज लोग अधिक उत्कीर्ण हों, सन्देशवाहक के प्रति युग-युगों की कृतज्ञता की स्मृति में अधिक उद्ग्रीव हों और जब देश की उसकी स्वतंत्रता से विश्लेष की अवधि पूरी हो गई हो, आनन्द-मिलन की वेला आयी हो, तो उस विरह के संत्रल मेघदूत के प्रति यक्ष की ओर से कहीं फिर उदासीनता न आ जाय, कहीं जन-शिव की आराधना में वह प्रमाद न हो, इसके लिए यह आवश्यक होगा कि मेघदूत का संदेश बार-बार गहा जाय और अपनी समग्रता में में गहा जाय, एक अंश में नहीं, तभी उसकी राष्ट्रीय जीवन मे सार्थकता होगी।"

(पृष्ठ ९१)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध-संग्रह में संकलित 'मेघदूत का संदेश' नामक

निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक पाठक वर्ग को यह चेता रहा है कि मेघदूत का संदेश पूरी निष्ठा के साथ अपनाया जाना चाहिए। प्रस्तुत गद्यांश इस निबन्ध का अन्तिम अनुच्छेद है और इस प्रकार इस गद्यांश में लेखक का संदेश निहित है।

व्याख्या : मेघदूत के संदेश का विवेचन करते हुए लेखक कह रहा है कि "मेघदूत का संदेश बहुत पुराना है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि आज के युग में उसकी प्रासंगिकता लुप्त हो गई है। सच तो यह है कि आज से शताब्दियों वर्ष पहले रचे गए इस काव्य में कवि कालिदास ने जो संदेश दिया है, वह पुराना होते हुए भी प्रत्येक युग में एक नवीनता लिये रहा है। प्रत्येक युग में प्रत्येक भारतीय ने इस संदेश से अपने भीतर एक नई स्फूर्ति का अनुभव किया है। इसका कारण कुछ भी हो सकता है—हो सकता है कि इस संदेश देने वाले कवि का ही परिणाम है कि शताब्दियों पहले का यह संदेश आज भी अपनी सार्थकता रखता है। यह भी हो सकता है कि कवि ने प्रकृति के अंग-प्रत्यंग में छिपी हुई अनन्त सौन्दर्य राशि को पूरी तन्मयता के साथ देखा हो। यह भी हो सकता है कि अमृत की प्राप्ति के लिए जीवन के प्रेम-सागर का मंथन हुआ हो कि मेघदूत के इतने पुरातन संदेश की प्रासंगिकता आज के युग में बनी हुई है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि मेघदूत के उक्त संदेश के प्रति लोगों के मन में लालसा हो। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में साहित्य का मूल्यांकन नए परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए। अब ऐसा समय आ गया है जबकि मेघदूत के उस संदेश के प्रति हम लोग कृतज्ञता का भाव रखें। प्रत्येक युग में प्रत्येक भारतीय ने अपने-अपने ढंग से उस संदेशवाहक के प्रति कृतज्ञता का भाव व्यक्त किया है और आज जब कि भारतवर्ष को अधिक स्वतंत्रता मिल गई है, आनन्द के क्षण आ गए हैं तो हमें और भी अधिक मन से उस संदेशवाहक के प्रति अपना आभार प्रकट करना चाहिए। मेघदूत का संदेश वहन करने वाले उस महान् कवि ने भारत की राष्ट्रीयता को पूरी समग्रता के साथ मेघदूत में व्यक्त किया था। उसने भारत के इतिहास, भूगोल, ज्ञान-विज्ञान, धर्म, भक्ति और संस्कृति सभी को एक 'मेघदूत' में पिरोने का सफल प्रयास किया था। निस्संदेह आज हम सभी को उसके प्रति कृतज्ञता का भाव रखना चाहिए। यथापि आज इस बात की पूरी आशंका है कि विरह का संदेश ले जाने वाले मेघ के प्रति यक्ष की ओर से किसी प्रकार की उदासीनता फिर से न हो जाए क्योंकि 'मेघदूत' काव्य में यक्ष की ओर से इसी प्रकार की उदासीनता का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार शिव

की अर्चना में जिस प्रमाद का वर्णन 'मेघदूत' में मिलता है, उसकी पुनरावृत्ति की भी आशंका नहीं रहनी चाहिए अन्यथा जन-शिव की स्थिति भी वैसी ही हो जाएगी। यदि हम यह चाहते हैं कि विरह के संबल के मेघदूत के प्रति यक्ष की उदासीनता फिर से न हो अथवा जनशिव की आराधना में वही प्रमाद फिर से प्रकट न हो तो हमें मेघदूत के संदेश को बार-बार दोहराना होगा और आत्मसात् करना होगा। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि मेघदूत का यह संदेश अपनी पूरी समग्रता के साथ अपनाया जाना चाहिए। हमारे राष्ट्रीय जीवन में मेघदूत के संदेश की सार्थकता तभी सिद्ध हो सकती है जबकि मेघदूत के संदेश को पूरी निष्ठा के साथ आत्मसात् किया जाय।"

विशेष— उक्त गद्यांश में लेखक ने जन-शिव की आराधना में प्रमाद न होने की बात कही है जिसके मूल में 'मेघदूत' की एक कथा है जो इस प्रकार है। 'मेघदूत' में वर्णित कथा के अनुसार शिव की अर्चना में भी ऐसा ही प्रमाद दिखाया गया था। 'मेघदूत' का नायक फूल चुनने के लिए नियुक्त किया गया था किन्तु वह यह जानते हुए भी कि शिव पर बासी फूल नहीं चढ़ाए जाने चाहिए, यौवन के उन्माद में शिव पर बासी फूल ही चढ़ाता रहा जिसके कारण उसे प्रवासी बनने का शाप भोगना पड़ा था।

अयोध्या उदास लगती है : सारांश

माघ मेले पर गंगा-स्नान करने के लिए प्रयाग आने वाली महिलाए अक्सर यह गाती हैं "अवधा लगेला उदास हम न अवध रहबै, रघुवर संगे जाब, हम न अवध में रहबै।" उक्त पंक्ति माघ मेले के एक बहुचर्चित गीत की पंक्ति है जिसके माध्यम से गंगास्नान करने के लिए आने वाली युवतियां, बड़ी-बूढ़ियां यही कहती हैं "हमें अब अयोध्या में नहीं रहना है क्योंकि अब यह अयोध्या उदास लगती है। हम तो रघुवर श्रीराम के साथ ही जायेंगी और अयोध्या में नहीं रहेंगी। हम भी राम के साथ वन को जाएंगी।" लेखक कहता है कि "माघ मेले के अवसर पर गाए जाने वाले इस गीत को सुनकर मैं कई बार यह सोचता हूं कि इन महिलाओं के मन में अवध के प्रति इतना रोष क्यों हो सकता है और क्या राम के मन में भी इन महिलाओं के प्रति इतना सद्भाव होगा कि ये इतनी बड़ी संख्या में घर से बाहर निकलने को उतावली हो गईं। मुझे लगता है कि इन महिलाओं की खीझ निराधार नहीं है अपितु उसका एक पुष्ट आधार है।"

सचाई यह है कि हिन्दू धर्म के प्रति हमारी आस्था अटूट है। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ से हमारी मूल्यांकन प्रणाली में काफी बदलाव आ गया है जिसका परिणाम यह हुआ है कि हम पश्चिम के नए प्रभावों को अपने पैमानों से नापने की बजाय अपने मूल्यों को पश्चिमी पैमाने से मापने लगे हैं। हमारे देश में मूर्ति-पूजा बलवती हो गई, पूजा-अर्चना की जाने लगी। श्रीकृष्ण और श्रीराम के ऐतिहासिक चरितों को मापा जाने लगा और उनके आदर्शों को भूलकर हम लोग उनके ऐतिहासिक लक्ष्यों की पूर्ति में लग गए। ईसामसीह के समान ही श्रीकृष्ण और श्रीराम से ऐतिहासिक लक्ष्यों को पूरा कराया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि सामान्य अशिक्षित जनता का धर्म और हो गया तथा शिक्षित चुने हुए लोगों का धर्म अधिक तर्कसंगत और परिभाषित हो गया। राजा राम मोहनराय और बंकिम चट्टोपाध्याय के प्रयासों से हिन्दू धर्म को एक नया रूप मिला जो कि पहले की तुलना में कहीं अधिक तर्कसंगत, व्यावहारिक था। तथापि धर्म का सनातन रूप अक्षुण्ण बना रहा और शानदार रथयात्रा के जुलूस की तरह सजे-संवरे रूप में चलता रहा। धर्म के इस रूप में कभी योग-साधना घर कर गई तो कभी उसे विलायती लोगों ने आगे बढ़ाने का प्रयास किया। इसके साथ-साथ धर्म का समाजशास्त्रीय अध्ययन भी किया जाने लगा। धर्म के रंग में रंगे हुए हिन्दुओं के संसार में केवल पाप, बुराई, गन्दगी और बेढंगेपन ही दिखाई पड़े। सच तो यह है कि हिन्दू धर्म केवल वही नहीं है जिसका दावा सत्तासीन हिन्दू लोग करते हैं और वह कोई ऐसी भी वस्तु नहीं है जिसे पैसों के बल पर खरीदा जा सके। हिन्दू धर्म अपने आप में एक जीवन्त और सुदीर्घ सनातन परम्परा है। यह स्मरणीय है कि हिन्दुओं के देवी-देवता केवल आराध्य ही नहीं हैं, वे आराधक भी हैं। रामचरित मानस का पाठ सुनने के लिए स्वयं हनुमान भी चले आते हैं। इसी प्रकार सूर की अंधी आंखों को राह दिखाने के लिए स्वयं बाल कृष्ण डंडा लेकर अवतरित हो जाते हैं।

यह कहना निराधार है कि अयोध्या में राम नहीं रहे, इसलिए अयोध्या उदास हो गई है। सच तो यह है कि आज भी श्रीराम सीता और लक्ष्मण को साथ लिए चित्रकूट में घूम रहे हैं। अयोध्या अथवा चित्रकूट सब कहीं है। लेखक के शब्दों में, 'पर राम असंख्य मिथक (पुरावृत्त) नहीं हैं। राम उन सब में सूत की तरह पिरोये हुए के अविच्छिन्न नाम हैं जिसमें एक मोती के बाद दूसरा मोती, एक मनोरम आख्यान के बाद दूसरा आख्यान पिन्हता चला जाता है और राम असंख्य घटनाओं के सिरे पर लात रखकर चले जाते हैं। ऐसे राम कब बीते और कब

बीतेंगे। वे हैं और वे वर्तमान ही रहेंगे।" माघ के मेले पर आने वाली स्नानार्थी महिलाएं राम के प्रति अपना क्षोभ व्यक्त करते हुए कहती हैं कि "राम बेईमान अकेले छोड़ि गइलें।" उनका कहना यह है श्री राम ने केवल सीता और लक्ष्मण को ही अपना समझा जो केवल उन्हें ही साथ लेकर वन चले गए। श्रीराम ने उन्हें पराया समझा होगा तभी तो वे उन्हें छोड़कर चले गए। इन धर्मभीरु महिलाओं के ऐसे उच्छ्वासित आवेग को धर्म की परिधि से निकालना कैसे उचित कहा जा सकता है। क्या धर्म का द्वार इतना संकुचित है कि उसमें राम के प्रति सीधा-सच्चा प्रेम नहीं समा सकता! धार्मिक पवित्रता के नाम पर रामास्वामी नायकर के शिष्य कागजी राम पर चप्पल बरसाते हैं किन्तु उनके ऐसा करने से राम का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। इस सम्बन्ध में एक बात स्पष्ट रूप से समझ ली जानी चाहिए कि राम की पवित्रता का महत्त्व राम की भक्ति में डूबे हुए हृदय के लिए होता है और राम की वह पवित्रता भावना के साथ एकाकार होती है। यदि भावना ही नहीं है तो फिर पवित्रता का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। एक बात और, राम की महिमा उनके चित्रों, मूर्तियों आदि तक ही तो सीमित नहीं है। यदि ऐसा होता तो राम का अपमान किया जा सकता था। यह सर्वविदित है कि राम का अपमान कोई नहीं कर सकता, यहां तक कि स्वयं रावण भी राम को अपमानित नहीं कर सका था। यद्यपि रावण को राम का रूप धारण करने का मंत्र आता था फिर भी वह सीता के समक्ष राम बनकर नहीं आया। उसने राम की भावना की थी और इसलिए वह राम को कैसे अपमानित कर सकता था! यह सच है कि उसने राम की भावना एक शत्रु के रूप में की थी फिर भी क्योंकि उसने भावना की थी इसलिए वह राम को अपमानित नहीं कर सका। जो भावनाशून्य होता है वह राम की मूर्तियां और चित्रादि का अपमान कैसे कर सकता है और ऐसे अपमान का अर्थ ही क्या होता है!

राम और कृष्ण ने बहुत पहले अपनी राजधानियां छोड़ दी थीं। राम ने अयोध्या और कृष्ण ने मथुरा का त्याग कर दिया था अतः राम और कृष्ण को उनकी राजधानियों में प्राप्त करना संभव नहीं है। अब तो राम चित्रकूट के घाट पर जाकर तुलसी के माथे पर उस चन्दन का तिलक लगाते हैं जो कि तुलसी राम को तिलक लगाने के लिए घिस रहे थे। इसी प्रकार श्रीकृष्ण भी गोपियों के बीच अपनी बालसुलभ क्रीड़ाएं करते देखे जा सकते हैं। निश्चय ही अयोध्या में श्रीराम और मथुरा में श्रीकृष्ण इतना स्वतंत्र आचरण नहीं कर सकते थे। हिन्दू धर्म राम

और कृष्ण के पीछे दीवाना है। हिन्दू धर्म जीवन-धर्म है, राम और कृष्ण की जन्म-तिथियां बड़े धूमधाम के साथ मनाई जाती हैं, उनकी पुण्यतिथियां नहीं मनाई जातीं। पुण्यतिथि तो केवल दिवंगत पिता की मनाई जाती है। हिन्दू लोग अपने दिवंगत पिता का दाह-संस्कार करके पीपल के पेड़ की शाखा में एक घड़ा बांध देते हैं जिसकी तली में एक छोटा-सा सुराख कर दिया जाता है। प्रतिदिन उस घड़े में पानी भरा जाता है और उसकी तली में से बूंद-बूंद पीपल की जड़ पर गिरता रहता है। घड़े के पास प्रतिदिन एक दीपक भी जलाया जाता है। कुछ समय के पश्चात् उस घड़े को भी फोड़ दिया जाता है, अस्थियों को गंगा में प्रवाहित कर दिया जाता है और इस प्रकार जीवन का एक अध्याय पूरा हो जाता है। भस्मभूत अवशेषों को अपवित्र माना जाता है, उन्हें छूना भी वर्जित है।

तथापि अब समय बदल गया है, अस्थियों को चांदी और तांबे के घड़ों में भर कर सजाया जाता है, उन्हें जुलूस के रूप में गंगा में प्रवाहित किया जाता है। दूसरे शब्दों में कहें, तो अब जीवन की नहीं, मृत्यु की भी पूजा होने लगी है। गांधी जी की मृत्यु के समय गांव-गांव में प्रतीकात्मक दाहसंस्कार किए गए। हमारे यहां श्राद्धों के माध्यम से हम अपने पितरों की भावना का स्मरण करते हैं। महत्त्व भावना का ही है अतः पूजा भी उसी की होनी चाहिए। आजकल हम जहां-तहां दिवंगत नेताओं की मूर्तियां स्थापित कर देते हैं और फिर समय के साथ-साथ वे मूर्तियां भी गिरकर धरती में मिल जाती हैं। मृत्यु-पूजा का कोई औचित्य नहीं है। जो मर चुका, उसकी पूजा की आवश्यकता नहीं है। पूजा तो दिवंगत व्यक्ति के आदर्शों की, उसके वैचारिक रूप की होनी चाहिए।

अयोध्या इसीलिए उदास है क्योंकि उसके साथ राम का इतिहास जुड़ा हुआ है। सच्चा हिन्दू धर्म अतीत के प्रति मोह नहीं रखता। यदि हिन्दू धर्म विगत के प्रति मोह रखता तो हमारे यहां ऐसी कामना नहीं की जाती :

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
कामयेदुःखतप्तानां केवलमार्त्तिनाशनम्।

अर्थात् मुझे न तो राज्य की कामना है, न स्वर्ग की, मैं पुनर्जन्म के चक्कर से मुक्ति का भी इच्छुक नहीं हूं, मैं तो केवल दुखी लोगों की पीड़ा के निवारण का इच्छुक हूं। हिन्दू धर्म वर्तमान के साथ पूरी साझेदारी का भाव रखता है। आजकल हिन्दू-धर्म और राम की पूजा में हृदय की सच्चाई नहीं है, प्रदर्शन की लालसा है। राम

की पूजा के नाम पर घरों की दीवारों पर कैलेण्डर टांगे जाते हैं, चर्चाएं आयोजित की जाती हैं और न जाने क्या-क्या किया जाता है। राम का सच्चा रूप तो लोक-भावना के साथ जुड़ा हुआ है। तुलसी ने भी एक स्थल पर कहा है कि :

सूधे मन सूधे वचन सूधी सब करतूति
तुलसी सूधी सकल विधि रघुवर प्रेम प्रतीति।

अर्थात् राम को प्राप्त करने के लिए मन, वचन और कर्म का सीधापन अर्थात् ॠजुता होनी चाहिए। सांसारिक स्वार्थों और प्रलोभनों से जुड़े रहकर राम की खोज नहीं की जा सकती। राम की खोज के लिए हमें न तो उनके महान कार्यों की चर्चा करनी है, न उनको लेकर किसी प्रकार के शास्त्रार्थों का ही आयोजन करना है। हमें यह मानकर चलना है कि राम हमारे जीवन का ही एक अंग हैं और हमें उनके बताए रास्ते पर चलना है। राम की प्राप्ति का और कोई साधन नहीं, और कोई मार्ग नहीं।

अयोध्या उदास लगती है : तात्विक विवेचना

निबन्धों पर विचार करते समय विद्वानों ने उनके अनेक लक्षण गिनाएं हैं, जैसे एक-सूत्रता, रोचकता, सजीवता, भावात्मकता, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता, हास्य-व्यंय का समावेश तथा कलात्मकता आदि। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, वह एक ललित-निबन्ध है जिसमें लेखक ने श्री राम की राजधानी अयोध्या के प्रसंग में हिन्दू धर्म और उससे जुड़े हुए बहुविध विषयों का सजीव विवेचन किया है। प्रस्तुत निबन्ध का आरम्भ बहुत ही रोचक ढंग से हुआ है जो कि इस बात का भी परिचायक है कि लोक-जीवन के प्रति लेखक के मन में कितना अधिक अनुराग है। प्रस्तुत निबन्ध को लेखक ने छोटे-छोटे किंतु अपने आप में स्वतः पूर्ण अनुच्छेदों में बांधने का प्रयास किया है। ये छोटे-छोटे अनुच्छेद लेखक के विचार-प्रवाह की बहुविध दिशाएं हैं किन्तु इन दिशाओं में भिन्नता होते हुए भी सभी का पर्यवसान एक ही बिन्दु पर होता है और वह है हिन्दू धर्म और उसके विभिन्न पक्ष। निबन्ध के उपर्युक्त तत्त्वों के आधार पर प्रस्तुत निबन्ध का विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है :

(क) **एकसूत्रता** : एकसूत्रता का आशय विषयगत एकसूत्रता होता है। निबन्ध में तरह-तरह के प्रसंगों और घटनाओं का वर्णन होता है किन्तु यह आवश्यक है कि इस वैविध्य का भी समाहार एकसूत्रता में हो। निबन्ध में वर्णित

बातों में भले ही ऊपर से असम्बद्धता दीखती हो किन्तु निबन्धकार का केन्द्रीय भाव अथवा विचार-प्रवाह उन विश्रृंखल सूत्रों को परस्पर जोड़ता हो। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, उसमें लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि भगवान की भक्ति का सीधा सम्बन्ध अन्तर्मन से होता है और वह कोई प्रदर्शन की वस्तु नहीं हो सकती। निबन्धकार ने आद्योपान्त अपनी इसी स्थापना का निर्वाह किया है और इस प्रकार वैचारिक स्तर पर एकसूत्रता बनाए रखी है।

(ख) **रोचकता :** निबन्ध का दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व रोचकता होती है। निबन्ध का विषय प्रायः विचारोत्तेजक होता है और इस प्रकार उसमें वैचारिक दुरूहता के समावेश की पूरी संभावना रहती है तथापि कुशल और प्रतिभासंपन्न निबन्धकार छुटपुट रोचक प्रसंगों का समावेश करके निबन्ध में पर्याप्त रोचकता उत्पन्न कर देते हैं। कोई भी पाठक निबन्ध जैसी विधा का आनन्द तभी उठा सकता है जबकि उसमें लेखक के विचार और भाव ऐसी कुशलता के साथ व्यक्त किए जाएं कि पाठकों को बौद्धिक मनोरंजन की प्राप्ति हो सके। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का सम्बन्ध है लेखक ने इसके आरम्भ में ही एक लोकगीत के प्रसंग का वर्णन करके उसे रोचकता प्रदान कर दी है। निबन्ध के आरम्भ की निम्न पंक्तियां देखिए—"माहौटी फुहार के साथ तीखी हवा और नीचे गीली रेत, इनको नकारती हुई स्वर-लहरी, 'अवधा लगेला उदास हम न अवध में रहबै, रघुवर संगे जाब, हम न अवध में रहबै, एक अद्भुत ऊष्मा पैदा करती है।' लोकगीत की उक्त पंक्ति जहां निबन्ध के वर्ण्य-विषय का उद्घाटन करती है, वहां एक प्रकार का सुरुचिपूर्ण वातावरण भी तैयार कर देती है। इसी प्रकार निबन्धकार ने प्रस्तुत निबन्ध में जहां-तहां लोक-जीवन का संस्पर्श देकर 'अयोध्या' जैसे विषय के विवेचन में पर्याप्त रोचकता उत्पन्न कर दी है।

(ग) **सजीवता :** निबन्ध का एक अन्य महत्त्वपूर्ण तत्त्व सजीवता होता है। निबन्ध का विषय सर्वदा रोचक अथवा सजीव नहीं होता, कभी तो निबन्ध का विषय विशुद्ध रूप से दार्शनिक अथवा विचारोत्तेजक हो सकता है। ऐसी स्थिति में निबन्धकार विषय की प्रस्तुति में सजीवता ला सकता है जिसके लिए वह जहां एक ओर रोचक प्रसंगों, घटनाओं का सहारा लेता है तो दूसरी ओर उपयुक्त शैली भाषा का भी प्रयोग करता है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, लेखक ने श्री राम के अभाव में उदास दीखने वाली अयोध्या के माध्यम से बहुविध विषयों का विवेचन किया है। इस प्रसंग में एक विशेष बात यह है कि लेखक ने निबन्ध में

जहां-तहां अयोध्या के लोकजीवन की झांकियां भी प्रस्तुत की हैं जिनके कारण ऊपर से शुष्क-सा दीखने वाला विषय भी काफी सजीव बन पड़ा है। उदाहरण के लिए निम्न पंक्तिया देखिए जिनमें अयोध्या का लोक-जीवन उभरकर आया है, "ये गांव की औरतें माघ मेला नहाने प्रयाग आयी हैं, अभी काफी अंधेरा है, पर गंगा-नहान का उत्साह गर्मी पैदा किए हुए है, सभी युवती भी नहीं हैं, बहुतेरी अस्सी पार कर चुकी हैं, पर सभी में एक नशा-सा छाया हुआ है, यह तीर्थ-यात्रा राम की वन-यात्रा की अनुगामिनी है। राम अयोध्या छोड़कर वन गए, अयोध्या उदास हो गई, बस उस अयोध्या में नहीं रहना है। कोई भी मेला हो, कोई भी पर्व हो, कोई भी तीर्थ हो, मेले के गीत की यह टेक बराबर गूंजती रहती है—रघुवर संगे जाव, हम न अवध में रहबैं। राम के साथ मैं भी वन चलूंगी, अवध में मुझे नहीं रहना है।"

(घ) **भावात्मकता** : निबन्ध मे वैचारिक दुरूहता के कारण रसमयता को क्षति पहुंचती है। केवल बौद्धिक ज्ञान और चिन्तन के सहारे सफल निबन्ध की रचना नहीं की जा सकती। निबन्ध ही क्या, साहित्य की कोई भी विधा हो, बुद्धि के साथ-साथ हृदय के स्पर्श का आभास मिलना आवश्यक है और यह तभी हो सकता है जबकि निबन्ध में गूढ़ विचारों को भी भावात्मकता का संस्पर्श दिया जाय। भावात्मकता के सस्पर्श से शुष्क और नीरस-सा दीखने वाला निबन्ध भी नीरस बन जाता है, उसे पढ़ने से पाठक को एक अद्भुत आनन्द की उपलब्धि होती है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, उसमें भावात्मकता का संस्पर्श आद्योपान्त बना हुआ है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए, "ऐसे राम कब बीते और कब बीतेंगे। वे हैं और वे वर्तमान ही रहेंगे। इसीलिए उनके लिए ऐसा छोह है कि मेले के गीतों की दूसरी कड़ी आक्रोश में पुकार उठती है, 'राम बेईमान अकेले छोड़ि गइलैं।' राम ने बड़ी बेईमानी की, अकेले छोड़कर चले गए, उन्होंने केवल सीता-लक्ष्मण को ही अपना सगा समझा, हम लोग उनके लिए कुछ नहीं। अब किसी हृदय से इस उच्छ्वसित आवेग को धर्म की सीमा के बाहर कर दिया जाए।"

(ङ) संगीतात्मकता अर्थात् काव्यगुणसम्पन्नता : यद्यपि निबन्ध विशुद्ध रूप से एक गद्य विधा होता है तो भी उसमें एक काव्य की-सी तरलता का समावेश करने से उसमें अद्भुत रसात्मकता आ जाती है। काव्यगुणसम्पनन्ता का आशय केवल यही है कि गद्य में भी पद्य के-से आनन्द की उपलब्धि हो और

वह तभी हो सकती है जबकि उसमें वर्णित भाव और विचार ऐसी कुशलता के साथ व्यक्त किए जाएं कि उनसे पाठक रससिक्त हो जाय। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का सम्बन्ध है लेखक ने गद्य के भीतर भी पद्य का-सा आनन्द समाविष्ट करने का प्रयास किया है।

(च) **वैयक्तिकता :** वैयक्तिकता का आशय इसी बात से है कि निबन्ध पर लेखक के व्यक्तित्व की सुस्पष्ट छाप अवश्य होनी चाहिए। निबन्ध के विषयों की कोई सीमा नहीं होती 'सबै भूमि गोपाल की जामे अटक कहा' वाली बात निबन्ध के विषयों के बारे में सर्वथा संगत होती है किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि निबन्ध का विषय लेखक के व्यक्तित्व से प्रभावित हो। इस प्रयोजन के लिए यह आवश्यक है कि निबन्ध का विषय लेखक की कल्पना को नियंत्रित न करे बल्कि लेखक की कल्पना ही विषय को अपने ढंग से प्रस्तुत करे। ऐसा करके ही लेखक और पाठक के बीच आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित हो सकता है और यह निश्चित है कि एक श्रेष्ठ निबन्ध में इस प्रकार की आत्मीयता अनिवार्यतः होनी चाहिए। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का सम्बन्ध है लेखक के व्यक्तित्व की सुस्पष्ट छाप देखी जा सकती है। सच तो यह है कि निबन्ध का विषय लेखक की रुचि का विषय है और इस कारण विषय के विवेचन में लेखक का व्यक्तित्व स्वभावतः बहुत गहरे घुलमिल गया है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"सोचता हूं कि कौन अवध में ये रहीं की उस अवध पर इतनी नाराजगी है और कौन राम इनके लिए परेशान कि उस राम के लिए ऐसी बेकली है कि घर अवधान हो, घर से बाहर निकल पड़ने की ऐसी उतावली हो गई है। इतिहास का संस्कार इस प्रश्न को बार-बार उठाता है, पर सनातनी मन खीझ-खीझकर रहता है, कुछ बात और है, यह अतीत का प्रत्याकलन नहीं हो सकता। इतना प्रत्यक्ष, इतना प्रत्यग, इतना प्रत्युत्पन्न अतीत नहीं हो सकता।" इसी प्रकार निबन्ध में जहां-तहां लोक-जीवन का जो संस्पर्श मिलता है, वह भी मूलतः लेखक के व्यक्तित्व की छाप का ही परिचायक है।

(छ) **हास्य-व्यंग्य :** निबन्ध की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता हास्य एवं व्यंग्य का समावेश होता है। हास्य एवं व्यंग्य के समावेश से निबन्ध में प्रभावात्मकता के साथ-साथ रोचकता, सजीवता और सुरसता उत्पन्न हो जाती है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का सम्बन्ध है। लेखक ने अनेक स्थलों पर हास्य एवं व्यंग्य का समावेश करके निबन्ध को रोचक और सजीव बना दिया है। उदाहरण के लिए

प्रस्तुत निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"रथ-यात्रा रुकी हुई है और सुदेशी कन्धे हार गए तो विलायती कंधे उसे उठाने की कोशिश कर रहे हैं, 'योगाड्रग, चढ़ाकर और रथ है कि टस से मस नहीं होता और रथ के वाहक पानी पी-पीकर कोसने लगते हैं, भरे रथ के बोझ को यांत्रिक रथभंजक (आटोरेकर) अपने उठाऊ यंत्रों से रथ को टांगकर ऐसे रथों के कचरा-बाड़ों अर्थात् समाजशास्त्रीय विश्लेषण करने वाले संस्थानों में लादकर ले जाने को जुट आए हैं और चूंकि ये रथभंजक पगडण्डियों पर जा नहीं सकते इसलिए राजमार्ग वाला रथ ही इनकी विश्लेषण तुला पर चढ़ाया जा सका है, पैरों को रथ मानकर चलने वाले जोगी की अलख अभी पकड़ में नहीं आ रही है। हिन्दू संसार में बस कुरूपता, बेढंगापन, गन्दगी, अश्लीलता, अनैतिकता और असभ्यता ही नजर आने लगी है। पर कौन इन विश्लेषकों के साथ माथापच्ची करे कि हिन्दू धर्म अपने को पढ़े-लिखे कहने वाले सत्तासीन ज्येष्ठ पुत्रों का अधमरा विश्वास नहीं, जिसे वे केवल जनतंत्रीय अनुकम्पाभाव से अपने घर के कोने में जोगाए हुए हैं। यह लावारिस शव नहीं जिसे कुछ चांदी के टुकड़ों पर खरीदकर चीर-फाड़ घर में प्रशिक्षण के लिए लाया जा सके।" इसी प्रकार हिन्दू जाति की मृत्यु-पूजा की प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए लेखक कहता है कि "पर आजकल बिलकुल उल्टा है। भस्मियां पवित्र हो गयीं, उनको रजतघटों में रखा जाने लगा और चुपचाप प्रवाहित करने के बजाय बड़े जुलूस के साथ उन्हें एक जगह नहीं, सैकड़ों जगह प्रवाहित करने का उन्माद शुरू हो गया। प्रवाहित करके रजतपट स्थायी प्रदर्शन की सामग्री बन गए, उनको गंगा-लाभ नहीं हो सका। मृत्यु की पूजा इतने भौंड़े तरीके से शुरू हुई कि मुझे स्मरण है, महात्मा गांधी का लोगों ने गांव-गांव दाह-संस्कार किया, मेरे बाबा तब जीवित थे, उन्हें बड़ा बुरा लगा गांव-गांव साल-साल रावण फूंका जाता है, सन्त का यह अपमान क्यों?"

(ज) **कलात्मकता**: निबन्ध में विचारों की अभिव्यक्ति की भाषा-शैली को कलात्मकता कहा जाता है। निबन्ध में जहां वर्ण्य विषय, भावों-विचारों का महत्त्व होता है, वहां उनकी प्रस्तुति की शैली का भी उतना ही महत्त्व होता है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का सम्बन्ध है—लेखक ने लोक-जीवन का संस्पर्श देकर अभिव्यक्ति को और भी अधिक सजीव रूप प्रदान कर दिया है। निबन्ध की भाषा अधिकांशतः बोलचाल की साधारण भाषा रही है। लेखक ने शब्दाडम्बर का सहारा कहीं नहीं लिया है। कदाचित इसी कारण प्रस्तुत निबन्ध की भाषा में कहीं भी दुरूहता

अथवा क्लिष्टता नहीं दीखती। भाषा की एक बानगी देखिए—"राम ने बहुत अरसे से अयोध्या छोड़ रखी है, कृष्ण ने मथुरा छोड़ रखी है। इन राजधानियों में, इन संस्थानों में राम या कृष्ण नहीं मिल सकते। जहां उनकी भावना होती रहेगी, निश्छल भाव से जहां उन्हें बुलाया जाएगा, वहीं रहेंगे। राजधानियों में बड़ी तपन है, बहुतों को राम या कृष्ण की उपस्थिति ही बर्दाश्त नहीं होती, बहुतों से उनकी प्रसन्नता नहीं सही जाती, बहुतों की कुचर्चा के वे शिकार होते हैं।" उपर्युक्त पंक्तियों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि लेखक ने अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए आवश्यकता के अनुसार अरसे, बर्दाश्त, शिकार जैसे उर्दू शब्दों का भी प्रयोग किया है। इसी प्रकार प्रस्तुत निबन्ध में लेखक ने अंग्रेजी के कतिपय शब्दों का भी प्रयोग किया है। इस दृष्टि से ड्रग, आटोरेकर जैसे शब्दों का प्रयोग उल्लेख्य है।

प्रस्तुत निबन्ध में लेखक ने वर्ण्य विषय को छोटे-छोटे किन्तु अपने आप में स्वतः पूर्ण अनुच्छेदों में बांधा है जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक अनुच्छेद में लेखक ने एक-एक विचारसूत्र को बांध दिया है। ये विचारसूत्र अपने आप में बहुविध होते हुए भी एक ही केन्द्रीय विचार अथवा भाव में समाहित हो जाते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर 'अयोध्या उदास लगती है' एक श्रेष्ठ निबन्ध बन पड़ा है जिसमें निबन्ध के परम्परागत तत्त्वों का भी सम्यक् निर्वाह हुआ है।

अयोध्या उदास लगती है : महत्त्वपूर्ण स्थलों की सप्रसंग व्याख्या

"महौटी फुहार के साथ तीखी हवा और नीचे गीली रेत, इनको नकारती हुई स्वर-लहरी 'अवध लगेला उदास हम न अवध में रहबै, रघुबर संगे जाब हम न अवध में रहबै, एक अद्भुत ऊष्मा पैदा कर देती है। ये गांव की औरतें माघ मेला नहाने प्रयाग आयी हैं, अभी काफी अंधेरा है, पर गंगा नहान का उत्साह गर्मी पैदा किए हुए है, सभी युवती भी नहीं हैं, बहुतेरी अस्सी पार कर चुकी हैं, पर सभी में एक नशा-सा छाया हुआ है, यह तीर्थयात्रा राम की वनयात्रा की अनुगामिनी है। राम अयोध्या छोड़कर वन गए, अयोध्या उदास हो गई, बस उस अयोध्या में नहीं रहना है। कोई भी मेला हो, कोई भी पर्व हो, कोई भी तीर्थ हो, मेले के गीत की यह टेक बराबर गूंजती रहती है—रघुवर संगे जाब, हम न अवध में रहबै। राम के साथ मैं भी वन चलूंगी, अवध में मुझे नहीं रहना है।

(पृ० ७५)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'अयोध्या उदास लगती है' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने गंगा-स्नान करने के लिए प्रयाग आने वाली महिलाओं के मन के उत्साह का वर्णन किया है।

व्याख्या : गंगा-स्नान के लिए आई हुई महिलाओं के भीतर के उत्साह का वर्णन करते हुए लेखक कहता है कि "माघ के महीने में पड़ने वाली वर्षा और उसके साथ चलने वाली तेज ठंडी हवा के रहते हुए भी गंगा-स्नान करने के लिए आई हुई महिलाओं के उत्साह में लेशमात्र भी अन्तर नहीं पड़ता। यह सच है कि माघ के महीने में अच्छी-खासी ठंड पड़ जाती है, वर्षा के कारण धरती भी ठंडी और गीली रहती है फिर भी गांव से महिलाओं के झुंड-के-झुंड गंगा-स्नान करने के लिए प्रयाग पहुंच जाते हैं। ये महिलाएं एक लोक-गीत की ये पंक्तियां दोहराती रहती हैं कि "अब श्रीरामचन्द्र जी अयोध्या छोड़कर वनवास पर चले गए हैं अतः हमें यह अयोध्या उदास लगती है, अब हम यहां नही रहेंगी। हम तो श्रीराम के साथ ही वन को जाएंगी, यहां अयोध्या में नहीं रहेंगी।" लेखक के अनुसार 'गांव से आने वाली इन भोली-भाली महिलाओं के इन उद्गारों को सुनकर ठंडे वातावरण में भी गरमी पैदा हो जाती है। ये सारी महिलाएं माघ के मेले में सम्मिलित होकर गंगा-स्नान करने के लिए प्रयाग तक आई हैं और बहुत सवेरे समूहों में जा रही हैं। सभी के भीतर एक अद्भुत उत्साह है। ऐसा नहीं है कि केवल युवतियां ही गंगा-स्नान करने आई हैं, अस्सी-अस्सी वर्ष की आयु वाली वृद्धाएं भी इस पुण्यलाभ में किसी से पीछे नहीं हैं। जब-जब ये महिलाएं गंगा-स्नान को आती हैं तब-तब वे सामूहिक रूप से इसी लोकगीत की वही पंक्ति दुहराती हैं जिसका अर्थ इस प्रकार है "राम अयोध्या से चले गए हैं, इसलिए अयोध्या उदास हो गई है, अब हम इस अयोध्या में नहीं रहेंगी और श्रीराम के साथ वन में ही जा मिलेंगी।" राम के वन-गमन के बाद इन महिलाओं के लिए अयोध्या में रहने का कोई प्रयोजन नहीं रह गया है। राम के बिना सूनी अयोध्या की उदासी सभी पर्वों, मेलों, तीर्थों के समय गाए जाने वाले इसी लोकगीत में मुखरित होती है।

"सही बात यह है कि हिन्दू धर्म के प्रति हमारी आस्था में ही कहीं ठहराव नहीं है। उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ से, तथाकथित पुनर्जागरण के बाद, एक अजीब उलटफेर हमारी मूल्यांकन पद्धति में हुई है, बजाय इसके कि हम पश्चिम के नये प्रभावों को अपने पैमानों से नापते, हम अपने ही मूल्यों को पश्चिमी पैमानों से नापने लगे। मूर्ति को परोक्ष का प्रतीक या माध्यम मानने वाला धर्म, प्रत्यक्ष

को परोक्ष का द्वार मानने वाला देश मूर्तिमोह का शिकार हो गया, प्रत्यक्ष पूजा का आराधक हो गया। श्रीकृष्ण और श्रीराम के ऐतिहासिक चरित परिमापित किए जाने लगे। नित्य लीला के असली और जन-जन में अभिव्याप्त उद्देश्य को भूलकर ऐतिहासिक लक्ष्य-सिद्धियों में हम भटकने लगे।"

(पृष्ठ ७६)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'अयोध्या उदास लगती है' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने हिन्दू धर्म के प्रति बदलते हुए दृष्टिकोणों का वर्णन किया है।

व्याख्या : हिंदू धर्म के प्रति लोगों के बदलते हुए दृष्टिकोणों का वर्णन करते हुए लेखक कह रहा है कि "सच्चाई यह है कि हिंदू धर्म के प्रति हमलोगों की आस्था सदैव एक-सी नहीं रही है। समय के साथ-साथ उसमें बदलाव आता गया है। इस प्रकार का बदलाव उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ से अधिक उभर आया है। भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में एक पुनर्जागरण की लहर आयी थी और उसके साथ हमारी दृष्टि में एक नवीनता का समावेश हुआ, हमारी मूल्यांकन पद्धति बदल गई। इस सबका फल यह हुआ कि हम लोगों ने पश्चिमी चिन्तन को और दर्शनों के प्रभावों को अपने पैमानों से नापने का औचित्य नहीं समझा और इसकी बजाय हम अपने जीवन-मूल्यों को पश्चिमी पैमानों से मापने लगे। धर्म और दर्शन के प्रति हमारी दृष्टि पश्चिमी रंग में रंगी गई, हमारा सोचने-समझने का तरीका पश्चिमी हो गया। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि हमारा धर्म मूर्तिपूजा में जुट गया, और हमारे देश के लिए प्रत्यक्ष पूजा ही सबकुछ हो गई। भाव यह है कि धर्म के नाम पर मूर्तिपूजा को बहुत बढ़ावा मिला और देश में व्यक्तिपूजा की प्रवृत्ति को भी बहुत बल मिल गया। हमारे यहां श्रीराम और श्रीकृष्ण का जो रूप जन-जन के मन-मस्तिष्क पर छाया हुआ था, वह तो गौण हो गया और उसके स्थान पर इन देवताओं के ऐतिहासिक चरितों का प्राधान्य हो गया। इन महान चरितों का विधिवत् अध्ययन किया जाने लगा।

"रथयात्रा रुकी हुई है और सुदेसी कन्धे हार गए तो विलायती कन्धे उसे उठाने की कोशिश कर रहे हैं, 'योगाङ्ग' चढ़ाकर और रथ है कि टस से मस नहीं होता और रथ के वाहक पानी पी-पीकर कोसने लगते हैं, भरे रथ के बोझ को यांत्रिक रथ-भंजन (आटोरेकर) अपने उठाऊ यंत्रों से रथ को टांगकर ऐसे

कचराबाड़ों अर्थात् समाजशास्त्रीय विश्लेषण ,करने वाले संस्थानों में लादकर ले जाने को जुट आए हैं और चूंकि वे रथभंजक पगडण्डियों पर नहीं जा सकते, इसलिए राजमार्ग वाला रथ ही इनकी विश्लेषण तुला पर चढ़ाया जा सका है, पैरों को रथ मानकर चलने वाले जोगी की अलख अभी पकड़ में नहीं आ रही है । विश्लेषण शुरू हो गया है । हिंदू संसार में बस कुरूपता, बेढंगापन, गन्दगी, अश्लीलता, अनैतिकता और असभ्यता ही नजर आने लगी है । पर कौन इन विश्लेषकों के साथ माथापच्ची करे कि हिंदू धर्म अपने को पढ़े-लिखे कहलाने वाले सत्तासीन ज्येष्ठ पुत्रों का अधमरा विश्वास नहीं है जिसे वे केवल जनतंत्रीय अनुकम्पा भाव से अपने घर के कोने में जगाये हुए हैं। यह लावारिस शव नहीं जिसे कुछ चांदी के टुकड़ों पर खरीदकर चीरफाड़ घर में प्रशिक्षण के लिए लाया जा सके। हिंदू धर्म एक जीवन्त उच्छ्वास है ।"

(पृष्ठ ७७)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'अयोध्या उदास लगती है' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने हिन्दू धर्म को एक जीवन्त और सनातन धर्म सिद्ध करने का प्रयास किया है ।

व्याख्या : लेखक कह रहा है कि 'हिन्दू धर्म के सच्चे स्वरूप को समझने-समझाने के लिए भारत में ही नहीं, विदेशों में भी अनेक प्रयास किए गए हैं। विदेशी विद्वान 'योग' आदि के नाम पर इस सनातन धर्म की तरह-तरह की व्याख्याएं करने का प्रयास करते रहे हैं। हिन्दू धर्म के अध्ययन का एक और पक्ष यह है कि कतिपय विद्वानों ने इसका समाजशास्त्रीय अध्ययन करने का भी प्रयास किया है। इस प्रकार का समाजशास्त्रीय अध्ययन करने वाले संस्थान वस्तुतः धर्म का एकांगी विलेषण ही कर पाते हैं क्योंकि वे धर्म को भी समाजशास्त्रीय दूरबीन से देखने-समझने का प्रयास करते हैं स्वभावतः इस प्रकार के समाजशास्त्रीय अध्ययन करने वालों की दृष्टि से धर्म के अन्य पक्ष अनदेखे ही रह जाते हैं । इनकी दृष्टि पूरी तरह एकांगी होती है। ये लोग धर्म का विश्लेषण केवल समाजशास्त्रीय दृष्टि से ही कर पाते हैं, उससे आगे उनकी दृष्टि की पहुंच ही नहीं है। भारतीय योग-साधना की बारीकियां भी इनकी दृष्टि से बच रहती हैं। इस प्रकार के समाज-शास्त्रीय अध्ययन का परिणाम यह होता है कि हिन्दू धर्म में इन लोगों को सर्वत्र बुराई ही बुराई दीखती है। इन्हें केवल यही दीखता है कि धर्म के नाम पर समाज

की कितनी क्षति हुई है। यही कारण है कि इन्हें हिन्दू धर्म में गन्दगी, अश्लीलता और अनैतिकता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखाई देता। हिन्दू धर्म का एक उज्ज्वल पक्ष भी है जो इनकी दृष्टि में नहीं समा पाता। ऐसी स्थिति में ये लोग यह भी मानने वाले नहीं हैं कि हिन्दू धर्म का जो कुत्सित अथवा घिनौना रूप उन्हें दीखा है, हिन्दू धर्म उसके अतिरिक्त कुछ और भी है। हिन्दू धर्म केवल कुछ सत्ताधारी लोगों की बपौती नहीं है। कुछ सत्ताधारी और सम्पन्न लोग अपने घरों में मन्दिर अथवा पूजागृह बनवा लेते हैं किन्तु इसका आशय यह नहीं है कि समूचा हिन्दू धर्म ऐसे लोगों के घरों, मन्दिरों, पूजास्थलों की सीमाओं के भीतर समाया हुआ है। इसी प्रकार हिन्दू धर्म ऐसा कोई शव भी नहीं है जिसे रुपये-पैसों के बदले पर खरीदा या बेचा जा सके! यह एक जीवन्त भावना है, एक सनातन धर्म है जो चिरकाल से चला आ रहा है और समूची हिन्दू जनता के विश्वास का सम्बल बना हुआ है।

विशेष : प्रस्तुत गद्यांश में हिन्दू धर्म के सनातन स्वरूप के प्रति लेखक की अटूट आस्था व्यक्त हुई है।

"...जिस रघुवर के बिना अयोध्या उदास हुई, वे रघुवर आज भी सीता-लक्ष्मण को लिये चित्रकूट में घूम रहे हैं, सीताजी की रसोई आज भी जग रही है जाने कितनी अयोध्याएं हैं, कितने चित्रकूट हैं, कितनी सीतावनियां हैं, वे कभी भी समाप्त नहीं होतीं। पर राम असंख्य मिथक (पुरावृत्त) नहीं हैं, राम उन सब में सूत की तरह पिरोये हुए के अनवच्छिन्न नाम हैं जिसमें एक मोती के बाद दूसरा मोती, एक मनोरम आख्यान के बाद दूसरा आख्यान पिन्हता चला जाता है और राम असंख्य घटनाओं के सिरों पर लात रखते चले जाते हैं। ऐसे राम कब बीते और कब बीतेंगे। वे हैं और वर्तमान ही रहेंगे। इसीलिए उनके लिए ऐसा छोह है कि मेले के गीतों की दूसरी कड़ी आक्रोश में पुकार उठती है—'राम बेईमान अकेले छोड़ि गइलें!' राम ने बड़ी बेईमानी की, अकेले छोड़कर चले गए, उन्होंने केवल सीता-लक्ष्मण को ही अपना सगा समझा, हम लोग उनके लिए कुछ नहीं। अब किस हृदय से इस उच्छ्वसित आवेग को धर्म की सीमा से बाहर कर दिया जाय।"

(पृष्ठ ७७)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'अयोध्या उदास लगती है' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने यह बताने का

प्रयास किया है कि राम अयोध्या के जनजीवन में पूरी तरह अनुस्यूत हैं। अयोध्या के कण-कण में राम इतने गहरे जमे हैं कि उनके बिना अयोध्या की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

व्याख्या : लेखक कह रहा है कि 'राम तो अयोध्या के कण-कण में बसे हुए हैं, अयोध्या के जनजीवन में श्रीराम, लक्ष्मण और सीता बहुत गहरे अनुस्यूत हैं। यह कहना भ्रामक है कि श्रीराम के वनगमन के कारण अयोध्या उदास हो गई है। श्रीराम तो अयोध्या में ही हैं। सीताजी की रसोई आज भी देखी जा सकती है। भाव यह है कि राम की ही भांति सीता भी यहां के जनजीवन में व्याप्त है। राम, लक्ष्मण और सीता भले ही भौतिक रूप से आज नहीं हैं, फिर भी वे यहां के जन-जीवन में बहुत गहरे रमे हुए हैं। सभी तरफ अयोध्याएं, चित्रकूट और सीता-वनियां दीखती हैं। भाव यह है कि राम, सीता केवल अयोध्या या चित्रकूट में ही नहीं होतीं बल्कि भारत में सर्वत्र उनका वास है। भारत के जनजीवन के साथ श्रीराम उसी तरह जुड़े हैं जिस तरह की माला में एक मोती दूसरे मोती के साथ जुड़ा हुआ होता है। इसी तरह भारत के जनजीवन में श्रीराम के आख्यान और उनसे जुड़ी हुई कथाएं विद्यमान हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं श्रीराम इन सभी बातों से अनभिज्ञ हैं। ऐसे राम और उनसे जुड़ी हुई कथाएं कभी भी समाप्त नहीं हो सकतीं। भारत के जनजीवन से राम को कभी भी नहीं निकाला जा सकता। वे तो बराबर बने रहेंगे। कदाचित् इसीलिए मेले में आने वाली महिलाओं के लोकगीत में इसी पंक्ति की पुनरावृत्ति होती है कि राम बेईमान हैं कि हमें अकेले छोड़ गए हैं। यदि श्रीराम हमें भी अपना मानते तो हमें भी अपने साथ ले गए होते। उन्होंने लक्ष्मण और सीता को अपना समझा होगा, इसीलिए वनगमन के समय वे उन्हीं दोनों को अपने साथ ले गए। अयोध्या के लोग यहीं रह गए और श्रीराम के वियोग में आज तक यही कहते रहते हैं कि 'राम बेईमान अकेले छोड़ि गइलैं।' लेखक कहता है कि "अयोध्यावासियों के ये भाव हिन्दू-धर्म का ही एक अंग है। यह कहना गलत है कि श्रीराम के प्रति ऐसा क्षोभ धार्मिक भावना से इतर बात है! हृदय की ऐसी सच्ची और सहज अभिव्यक्ति धर्म से अलग कैसे हो सकती है। धार्मिक भावना का यह रूप किसी भी दृष्टि से हेय कैसे कहा जा सकता है!

विशेष : प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने हिन्दू धर्म को भावनात्मक धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। धर्म का यह भावनात्मक धरातल भी समान

रूप से उज्ज्वल होता है।

"राम ने बहुत अरसे से अयोध्या छोड़ रखी है, कृष्ण ने मथुरा छोड़ रखी है। इन राजधानियों में, इन संस्थानों में राम या कृष्ण नहीं मिल सकते। जहां उनकी भावना होती रहेगी, निश्छल भाव से जहां उन्हें बुलाया जाएगा, वहीं रहेंगे। राजधानियों में बड़ी तपन है, बहुतों को राम या कृष्ण की उपस्थिति ही बर्दाश्त नहीं होती, बहुतों से उनकी प्रसन्तता नहीं सही जाती, बहुतों की कुचर्चा के वे शिकार होते हैं। इसीलिए वे राम चित्रकूट के घाट पर तुलसीदास को तिलक देने के लिए विराजमान रहते हैं। उस चन्दन से तिलक करने के लिए जिसे तुलसीदास उनको चढ़ाने के लिए घिस रहे थे। कृष्ण गंवार ग्वालिनों के घर में माखन चुराने के लिए घुसे रहते हैं। राजधानी में ये मजे कहां ?

(पृष्ठ ७८-७९)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'अयोध्या उदास लगती है' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि धर्म का सच्चा रूप मनुष्य की भावना में देखा जा सकता है। श्रीराम के प्रति हिन्दुओं की भक्ति प्रदर्शन की नहीं, अनुभूति की वस्तु है।

व्याख्या : लेखक कह रहा है कि अब न तो श्रीराम अयोध्या में हैं न श्रीकृष्ण मथुरा में। श्रीराम एक समय अयोध्या के राजा थे। इसी प्रकार किसी समय में श्रीकृष्ण मथुरा के राजा रहे थे। किन्तु अब समय बहुत बदल गया है। अब ये राजा अपनी राजधानियां छोड़ गए हैं। राम और कृष्ण अब वहीं रहेंगे जहां सच्ची भावना से उन्हें स्मरण किया जाएगा। भावना की निश्छलता पहली शर्त है। अयोध्या और मथुरा जैसे स्थानों में अब राम और कृष्ण-भक्ति का प्रदर्शन करने वाले यह चाहते ही नहीं कि राम और कृष्ण यहां रहें। यही नहीं, अब तो यहां राम और कृष्ण को लेकर अनेक प्रकार की अच्छी-बुरी चर्चाएं भी होती हैं, लोग तरह-तरह के तर्क-वितर्कों में उलझे रहते हैं। स्वभावतः ऐसी स्थिति में वे अयोध्या और मथुरा जैसी नगरियों में कैसे रह सकते हैं! राम और कृष्ण तो सच्ची और निश्छल भावना के भूखे हैं और इस कारण वे चित्रकूट के घाट पर राम की भक्ति में लीन तुलसी के निकट रहने और उसका सत्कार करने के इच्छुक हैं। यद्यपि तुलसी स्वयं राम के माथे पर तिलक लगाने के लिए चन्दन घिस रहे हैं फिर भी राम तो उनकी एकनिष्ठ भक्ति को देखकर गद्गद हुए जाते हैं और इससे पहले कि तुलसी राम के माथे पर चन्दन का टीका लगाएं, स्वयं राम ही तुलसी के माथे

पर उसी चन्दन का टीका लगाने को आतुर रहते हैं। इसी प्रकार श्रीकृष्ण को भी मथुरा की चकाचौंध के स्थान पर अल्हड़ गोपियों का निश्छल प्रेम-भाव अधिक भाता है। कहने का भाव यह है कि राम और कृष्ण अब प्रदर्शन की भक्ति के नहीं अपितु सच्ची और निश्छल भक्ति के प्रेमी हैं। यही नहीं, निश्छल और सच्ची भक्ति करने वालों के प्रति राम और कृष्ण एक आदर का भाव रखते हैं।

विशेष—(क) लेखक ने निश्छल और सच्ची भक्ति की महत्ता प्रतिष्ठित की है।

(ख) लेखक ने इसी लेख में इसी प्रकार का भाव व्यक्त करते हुए कहा है कि 'हिन्दू देवी-देवता केवल आराध्य ही नहीं, आराधक भी हैं। मानस-पाठ होगा तो हनुमान जी चुपचाप एक गोलियायी गमछी पर बैठ जायेंगे। अन्धे सूरदास का डण्डा हाथ में लेकर बालकृष्ण आंखमिचौनी का खेल रचने लगेंगे। विवाह के गीत में श्रीराम 'वनरा' बन जाएंगे और अपनी मां-बहन के लिए सौ-सौ गालियां सुन कर मुस्कराते रहेंगे।

"पर आजकल बिलकुल उलटा है। भस्मियां पवित्र हो गई, उनको रजत-घटों में रखा जाने लगा और चुपचाप प्रवाहित करने के बजाय बड़े जुलूस के साथ उन्हें एक जगह नहीं, सैकड़ों जगह प्रवाहित करने का उन्माद शुरू हो गया। प्रवाहित करके रजतघट स्थायी प्रदर्शन की सामग्री बन गए, उनको गंगा-लाभ नहीं हो सका। मृत्यु की पूजा इतने भौंड़े तरीके से शुरू हुई कि मुझे स्मरण है, महात्मा गांधी का लोगों ने गांव-गांव दाह-संस्कार किया। मेरे बाबा तब जीवित थे, उन्हें बड़ा बुरा लगा। गांव-गांव साल-साल रावण फूंका जाता है, संत का यह अपमान क्यों? पर मृत्यु-पूजक धर्म का ज्वार इस देश में बहुत पहले आ चुका था और मृत्यु-पूजा प्रतिष्ठा की बात समझी जाने लगी। श्राद्ध में पिता का ध्यान लाकर तेज-पुंज के रूप में करने के लिए कहा जाता है, पिता की तस्वीर का ध्यान करने को नहीं कहा जाता।"

(पृ० ७९-८०)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'अयोध्या उदास लगती है' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने हिन्दुओं की प्रदर्शन-प्रवृत्ति पर तीखा व्यंग्य किया है।

व्याख्या : हिन्दू धर्म में आजकल जिस प्रदर्शन की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं,

उस पर व्यंग्य करते हुए लेखक कहता है कि "आजकल स्थिति दूसरी हो गयी है। अब मनुष्य की मृत्यु के बाद उसकी भस्मियों की भी पूजा की जाने लगी है अर्थात् हमारे यहां अब मृत्यु-पूजा भी शुरू हो गई है। एक समय था जबकि मृत्यु के मानव के पार्थिव शरीर के अवशेषों को गंगा में प्रवाहित कर दिया जाता था किन्तु अब वैसा नहीं होता; अब तो पार्थिव शरीर की भस्मियों को चांदी के कलशों में रखा जाता है और फिर जुलूस के साथ उन्हें गंगा में प्रवाहित किया जाता है। भाव यह है कि अब प्रदर्शन की प्रवृत्ति अधिक बलवती हो गई है। इसके बाद चांदी के इन कलशों को सजावट के रूप में रख दिया जाता है, इन्हें गंगा में प्रवाहित नहीं किया जाता। सच तो यह है कि हमारे यहां मृत्यु-पूजा का युग ही शुरू हो गया। जीते जी भले ही हम किसी की पूजा न करें किन्तु मृत्यु के बाद तो प्रदर्शन की झड़ी लग जाती है। यही नहीं, मृत्यु की पूजा भी बहुत ही भद्दे ढंग से की जाने लगी। महात्मा गांधी की मृत्यु हुई तो लोगों ने गांव-गांव में गांधीजी का दाह-संस्कार किया। गांधीजी के प्रति अपनी श्रद्धा को व्यक्त करने के लिए लोगों ने यही भौंडा ढंग अपनाया। यह ठीक है कि रामलीला के दौरान दशहरे के अवसर पर प्रतिवर्ष रावण का पुतला खड़ा करके फूंका जाता है किन्तु उसके मूल में तो यही भाव छिपा होता है कि रावण असत्य, अज्ञान और अन्धकार का प्रतीक है। उसके पुतले को फूंककर यही निश्चय दोहराया जाता है कि हमारे जीवन में से असत्य, अज्ञान और अंधकार का सफाया हो, दूसरी ओर महात्मा गांधी तो सत्य, अहिंसा के अवतार थे। उनकी बराबरी रावण के साथ कैसे की जा सकती है। गांधीजी की मृत्यु के समय गांव-गांव में दाह-संस्कारों का आयोजन सच्चे अर्थों मे उस महान् संत और उसके द्वारा प्रतिपादित महान जीवन-मूल्यों का अपमान करने जैसा है। हमारे जनजीवन में मृत्यु-पूजा कोई नई बात नहीं है, हमारे यहां तो मृत्यु-पूजा बहुत पुराने समय से चली आयी है। मृत पिता के श्राद्ध के समय तो उसे सूर्य के समान तेजयुक्त माना जाता है किन्तु उनके बताए आदर्शों, सिद्धान्तों पर चलने का कोई संकल्प नहीं किया जाता। जीवित रहते हुए पिता को भले ही निरादर और तिरस्कार का भागी बनना पडे किन्तु मृत्यु के बाद तो उसके गुण गाते-गाते नहीं थकते।

विशेष : प्रस्तुत गद्यांश में आधुनिक जनजीवन में व्याप्त प्रदर्शन की प्रवृत्ति पर तीखा व्यंग्य-प्रहार किया गया है। हमारे यहां दिवगत पितरों के श्राद्ध हमारी इसी प्रकार के प्रदर्शन की मनोवृत्ति के परिचायक हैं।

"आज इतने चौराहों पर जो मूर्तियां स्थापित हो रही हैं और दूसरे दिन वे ही भूलुंठित की जा रही हैं। इसके पीछे मृत्यु-पूजा का ही भाव और भय काम कर रहे हैं। जो चला गया उसकी पार्थिव आवृत्ति इतिहास के लिए जरूरी हो, पर उसकी पूजा क्यों? पूजा हो तो उसके वैचारिक रूप की पूजा हो, जीवन में जो रूप आत्मसात् हुआ है, उसकी पूजा हो। जो रित गया, फूट गया, उसकी पूजा क्यों हो? पर आज जो इस मूर्ति-मोह का खण्डन करे, वह पागल ही समझा जाएगा।"

(पृष्ठ ८०)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'अयोध्या उदास लगती है' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिनमें लेखक ने मूर्ति-मोह की प्रवृत्ति पर तीखा व्यंग्य किया है।

व्याख्या : मूर्ति-मोह की प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए लेखक कह रहा है कि "आलकल लोगों के भीतर मूर्तियों के प्रति अत्यधिक मोह हो गया है। जगह-जगह चौराहों पर महान देवी-देवताओं, संतों, नेताओं की विशालकाय मूर्तियां प्रतिष्ठित की जाती हैं और समय के साथ-साथ वे धराशायी भी हो जाती हैं। इन मूर्तियों की प्रतिष्ठा के पीछे मृत्यु-पूजा का ही भाव कार्य करता है। सच तो यह है कि जिस व्यक्ति की मृत्यु हो गई, उसके जन्मस्थान, जन्मतिथि, पुण्यतिथि जैसे ब्यौरे केवल इतिहास की सामग्री हो सकते हैं। इन सभी बातों का केवल ऐतिहासिक महत्त्व हो सकता है। इतिहास की दृष्टि से यह जानना आवश्यक हो सकता है कि कौन-सा नेता या संत कब और कहां पैदा हुआ, मानव-कल्याण के लिए उसने क्या कुछ किया आदि। तथापि यथार्थ में देखने में यह आता है कि हमारे यहां दिवंगत संतों, नेताओं आदि की मूर्तियां बनाकर उनकी पूजा की जाती है, उन पर मालाएं अर्पित की जाती हैं। यह प्रवृत्ति अपने आप में हमारा कोई हित नहीं करती। जो मर गया, इस संसार से सदा-सदा के लिए विदा हो गया, उसकी पूजा किए जाने का कोई औचित्य नहीं है। यदि फिर भी हमें पूजा करनी ही है तो बजाय इसके कि हम उसकी विशालकाय मूर्ति प्रतिष्ठित करें और फिर मालाएं अर्पित करके उसके प्रति अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करें, हमें उसके बताए हुए मार्ग पर चलने का, उसके बताए हुए नियमों, सिद्धान्तों का पालन करने का प्रयास करना चाहिए। किसी भी दिवंगत संत या नेता के प्रति सच्चा श्रद्धाभाव यही हो सकता है कि हम उसके बताए हुए मार्ग का अनुसरण करें। तथापि आज के जीवन में मूर्तिपूजा की

प्रवृत्ति इतनी अधिक बलवती हो गई है कि उसका प्रतिकार करना सहज नहीं है। आज यदि कोई व्यक्ति मूर्ति-पूजा की इस प्रवृत्ति का खण्डन करता है तो उसे विक्षिप्त ही समझा जाएगा।

विशेष : लेखक ने प्रस्तुत गद्यांश में मूर्ति-पूजा की निस्सारता सिद्ध करने का सफल प्रयास किया है। लेखक के अनुसार दिवंगत महापुरुषों के प्रति सच्ची श्रद्धा व्यक्त करने की सबसे अच्छी विधि यही है कि उनके बताए मार्ग, सिद्धान्तों, मूल्यों का आदर किया जाय मूर्तियां स्थापित करना तो विशुद्ध रूप से प्रदर्शन की प्रवृत्ति का परिचायक है।

मेरे राम का मकुट भीग रहा है : सारांश

प्रस्तुत निबन्ध के आरम्भ में लेखक अपनी उदास मन:स्थिति का वर्णन कर रहा है। वह महीनों से उदास बना हुआ है जबकि विचार करने पर उसे इस उदासी का कोई विशेष कारण भी दिखाई नहीं देता। लेखक की मन:स्थिति ऐसी विचित्र बनी हुई है कि कभी तो बड़ी-से-बड़ी परेशानी पैदा करने वाली घटना एक नितांत सामान्य, उपेक्षणीय घटना बनकर रह जाती है और कभी बहुत ही मामूली छोटी-सी दीखने वाली घटना कई दिनों तक उसे परेशान किए रहती है। इसी प्रसंग में लेखक एक ऐसी ही घटना का वर्णन कर रहा है जिसे लेकर वह बहुत ही परेशान हो गया था। दो-चार दिन पहले उसके एक मित्र रात को नौ बजे संगीत का कोई कार्यक्रम सुनने गए थे। लेखक के एक चिरंजीव और बाहर से आई हुई एक कन्या ने भी उसी संगीत कार्यक्रम में जाने का अनुरोध किया जिसे लेखक ने हिचकते हुए मन ने स्वीकार कर लिया। लेखक ने यह हिदायत अवश्य दे दी कि वे डेढ़-दो घंटे कार्यक्रम सुनकर लौट आए किन्तु वे लोग तो बहुत देर तक नहीं लौटे। रात के बारह बजे, तो लेखक की पत्नी चिन्तित हो उठी—क्योंकि शहरों में आजकल रातों में लड़के-लड़कियों का आना-जाना सर्वथा निरापद नहीं होता। लेखक ने किसी तरह अपनी पत्नी को तो चुप कर दिया किन्तु उसकी अपनी उद्विग्नता समय के साथ-साथ और अधिक बढ़ती गई।

तभी लेखक के मन-मस्तिष्क में बचपन में दादी-नानी से सुने एक गीत की ये पंक्तियां कौंध गई—

मोरे राम के भीजैमुकुटवा
लछिमन के पटुकवा

मोरी सीता के भीजै सेनुरवा
त राम घर लौटहिं ।

अर्थात् मेरे राम का मुकुट भीग रहा होगा, मेरे लक्ष्मण का पट्टा भीग रहा होगा। मेरी सीता की मांग का सिन्दूर भीग रहा होगा, मेरे राम घर लौट आते। लेखक को याद है कि जब कभी वह बहुत बड़े अन्तराल के बाद अपने घर लौटता तो घर की दादी-नानी उसका स्वागत यही कहकर करती थीं कि 'मेरे लाल को कैसा वनवास मिला था।' आज बड़ा होने पर लेखक को अपनी दादी-नानी की इस उद्विग्नता का रहस्य पता लग गया। उसे लगा कि हमसे अगली पीढ़ी, हमारी पीढ़ी की ममता, हृदय की उद्विग्नता को नहीं समझ पाती और एक हमारी पीढ़ी है जो कि अपनी संतान के संभावित संकट की कल्पना मात्र से ही उद्विग्न हो जाती है।

लेखक को श्रीराम की कथा का वह प्रसंग याद आ गया जबकि श्रीराम को वनवास से हुआ था और उनकी मां कौशल्या उद्विग्न हो उठी थीं। उस समय भी राम के माथे पर मुकुट अवश्य था। सभी को उसी मुकुट के भीगने की चिन्ता रहती थी। आज भी हिन्दुओं के जनजीवन में वनवासी धनुर्धर राम ही राजाराम बने हुए हैं। श्री राम के वनगमन के समय उन्होंने अपना राजसी वेश तो उतार फेंका किन्तु उनका मुकुट तो लोगों के हृदय में बसा हुआ था, वह कैसे उतरता। लोगों को यही चिंता सालती रही कि कहीं श्रीराम का मुकुट, लक्ष्मण का दुपट्टा और सीताजी की मांग का सिन्दूर न भीग जाए। आशय यही है कि श्रीराम-लक्ष्मण और सीता सभी तो ऐश्वर्य और राजसी वैभव के हकदार हैं किन्तु फिर भी उनके भाग्य में वनवास ही लिखा है।

लेखक को लगता है कि एक श्रीराम की ही माता कौशल्या नहीं अपितु सारे भारत देश की एक कौशल्या हैं जिसे हर वर्षा में बस एक ही चिन्ता सालती है अर्थात् "मोरे राम के भीजै मुकुटवा"। उसे बराबर यही चिंता रहती है कि उसकी सन्तान को वह सुख-वैभव नहीं मिल पा रहा है जिसकी वह पात्र है। इस कौशल्या को धीरज नहीं मिलता। लगता है कि संसार का नियम यही है—ऐश्वर्य और निर्वासन दोनों साथ-साथ चलते हैं। जिस राम के भाग्य में राजसी वैभव-विलास मिला था उसके भाग्य में निर्वासन का दुख पहले ही बदा था। सारा संसार मंगल-मोद में निमग्न है, उसे सर्वत्र हर्ष-विलास ही दीखता है किन्तु लेखक स्वभाव से

निराशावादी है और इसी कारण उसकी आंखें शंकालु रहती हैं। लेखक की कठिनाई यही है कि उसे मंगलमय प्रभात की कल्पना में भी अंधेरी कालरात्रि का भय दीखता है। जब कभी वह किसी बंदनवार को देखता है तो उसे वह किसी मंगल के रूप में नहीं अपितु बटोरी हुई रस्सी के रूप में कुंडली मारे नागिन के रूप में देखता है। लेखक की शंकालु दृष्टि जो कुछ देखती है, वह तुलसी की निम्न पंक्तियों में वर्णित है—

लागति अवध भयावह भारी,
मानहुं कालराति अंधियारी।
घोर जंतु सम पुर नरनारी,
डरपहिं एकहिं एक निहारी।
घर मसान परिजन जनु भूता,
सुत हित मीत मनहुं जमदूता।
बागंह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं,
सरित सरोवर देखि न जाहीं।

मंगलमय प्रभात की कल्पना के स्थान पर अंधेरी कालरात्रि की उक्त भयावह कल्पना केवल इसी कारण थी क्योंकि जिस राम को ऐश्वर्य मिलने वाला था, उसे वनवास भोगना पड़ा। इसीलिए लेखक चाहता है कि भले ही राम भीग जाएं किंतु राम के उत्कर्ष की कल्पना सुरक्षित रहनी चाहिए। लेखक को यही चिन्ता है कि राम के उत्कर्ष की कल्पना कहीं खण्डित न हो जाए।

राम और सीता की स्थिति भी भिन्न है क्योंकि राम तो वनवास के बाद लौट आते हैं किन्तु सीता को तो पुनः निर्वासन का दुख भोगना पड़ता है। यह सर्व-विदित है कि श्रीराम ने किन्हीं कारणों से सीता को फिर से वन में भेज दिया था जहां उसे प्रसवपीड़ा सहन करनी पड़ी। उस समय जन्म के गीत गाने वाला भी कोई नहीं था, प्रसवपीड़ा के समय सहारा देने वाला कोई नहीं था। जंगल की सूखी लकड़ियां बीन-बीनकर वह अपने शरीर को ऊष्णता पहुंचाती हैं और जुड़वां बच्चों को जन्म देती है। फलतः अयोध्या पहुंचकर भी राम को राजसी वैभव का सुख नहीं मिल पाता। सीता के अभाव में राम के लिए अयोध्या पुनः जंगल की तरह बन गई है। उनका मुकुट स्वयं उन्हीं के लिए भार बन गया है। यद्यपि सीता जंगल में रहते हुए भी राम के मुकुट की रक्षा करती है किन्तु राम के लिए

अयोध्या आने पर भी सुख सुलभ नहीं रह जाता।

लेखक इसी विचार-तंद्रा में डूबा हुआ था कि उसे पुनः यह याद आया कि उसका पुत्र और बाहर से आई हुई जो कन्या संगीत के कार्यक्रम में भाग लेने गए थे, वे अभी तक घर नहीं लौटे थे। निबन्ध के आरम्भ में लेखक ने जिस चिन्ता का उल्लेख किया था, वही चिन्ता पुनः घिर आई। सारी रात लेखक ने नाना प्रकार की दुश्चिन्ताओं में बिताई थी। इन लोगों की प्रतीक्षा करते-करते लेखक निराश हो गया था कि तभी सवेरे चार बजे घर पर दस्तक हुई। सभी लोग सकुशल लौट आए थे, किसी ने कुछ खाया-पिया नहीं और सभी चुपचाप अपने-अपने स्थान पर सो गए लेखक ने भी चैन की सांस ली।

लेखक अपने मन के भीतर झांकता है तो उसे बार-बार यही ध्यान आता है कि उसे सबसे अधिक चिन्ता इसी बात की थी कि बाहर से आई हुई परायी कन्या भी रात देर तक नहीं लौटी थी। लेखक को लगता है कि उस कन्या की चिन्ता शायद इसीलिए थी कि उसे सीता का स्मरण हो आया था। लेखक को यह भी लगता है कि उसका मन बहुत बंटा हुआ है—हजारों मनचाही और अनचाही चीजों के बीच। उसे लगता है कि उसकी राम के भीगने की चिन्ता भी शायद यथार्थ नहीं है। वह सोचता है कि इस प्रकार की चिन्ता किसी पराये के लिए कैसे हो सकती है, अपनों के लिए होती है।

राम के मुकुट भीगने की चिन्ता तभी हो सकती है जबकि राम के प्रति वैसा ही दर्द का सम्बन्ध हो जैसा कि अपने चिरंजीव और बाहर से आई हुई कन्या के लिए था। केवल राम की चिन्ता से भरा हुआ हृदय लेखक के पास कहां है? कन्या की चिन्ता करते समय उसे सीता का ख्याल आ गया था। लेखक इसी चिन्ता में डूबा हुआ है कि सूर्योदय हो जाता है और उसके साथ ही चक्की पीसती हुई महिलाओं के गीत के ये स्वर सुनाई पड़ते हैं "मोरे राम के भीजै मुकुटवा।"

मेरे राम का मुकुट भीग रहा है : तात्विक विवेचना

हमारे यहां के साहित्य-मनीषियों ने निबन्ध के स्वरूप पर विचार करने के बाद उसके निम्न आठ तत्त्व निर्धारित किए हैं अर्थात्—एकसूत्रता, रोचकता, सजीवता, भावात्मकता, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता, हास्य व्यंग्य का समावेश तथा कलात्मकता। प्रत्येक निबन्ध में ये तत्त्व किसी न किसी रूप में विद्यमान रहते हैं।

जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, यह निबन्ध प्रस्तुत निबन्ध-संग्रह का अन्तिम निबन्ध है। श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित निबन्ध-सग्रंह का नाम 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक के अनुसार प्रस्तुत निबन्ध बहुत ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि निबन्ध-संग्रह का नामकरण भी इसी आधार पर किया गया है। प्रस्तुत निबन्ध में लेखक ने एक व्यक्तिगत प्रसंग को लेकर यह बताने का प्रयास किया है कि प्रत्येक आनेवाले पीढ़ी पिछली पीढ़ी की ममता नहीं समझ पाती और पिछली पीढ़ी अपनी संतान के संभावित संकट की कल्पना मात्र से उद्विग्न हो जाती है। एक दिन लेखक का पुत्र और दिल्ली से आई मेहमान लड़की रात के समय एक संगीत कार्यक्रम का आनन्द लेने गई थीं। लेखक ने उन्हें जाते समय यह हिदायत कर दी थी कि एक-डेढ़ घंटे बाद ही घर लौट आएं किन्तु वे लोग सवेरे चार बजे लौटकर आए। स्वभावतः इस बीच लेखक बहुत ही उद्विग्न रहा। उसी उद्विग्नता में उसे श्रीराम के प्रसंग का स्मरण हो आया। उसे याद आया कि श्रीराम को ऐश्वर्य पाने का हक था किन्तु निर्वासन उनके भाग्य में पहले से ही बदा था। लेखक के अनुसार ऐश्वर्य और निर्वासन साथ-साथ चलते हैं। निबन्ध के तत्त्वों के आधार पर प्रस्तुत निबन्ध का विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है :

(क) रोचकता : निबन्ध के तत्त्वों में रोचकता एक बहुत महत्त्वपूर्ण तत्त्व होती है। यद्यपि निबन्ध मूलतः एक गद्य-विधा है फिर भी रोचकता के समावेश से वह पठनीय और मनोरंजक हो जाता है। इस प्रयोजन के लिए निबन्धकार निबन्ध में जहां-तहां रोचक प्रसंगों को जोड़ देता है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, लेखक ने लोक-जीवन का संस्पर्श देकर इसे रुचिपूर्ण बना दिया है। इस दृष्टि से प्रस्तुत निबन्ध में प्रयुक्त एक लोकगीत की निम्न पंक्तियां देखिए—

मोरे राम के भीजै मुकुटवा
लछिमन के पटुकवा
मोरी सीता के भीजै सेनुरवा
त राम घर लौटहिं।

(ख) एकसूत्रता : निबन्ध में एकसूत्रता का निर्वाह बहुत आवश्यक होता है। निबन्ध का विषय कुछ भी हो सकता है और उसमें वर्णित घटनाएं, प्रसंग आदि ऊपर से एक-दूसरे से विलग प्रकट हो सकते हैं किन्तु फिर भी लेखक उस वैविध्य में भी एकसूत्रता का निर्वाह करता है। निबंध का केन्द्रीय विचार अथवा विषय

सदैव एक ही होता है। लेखक इसी बात का प्रयास करता है कि निबन्ध में वर्णित विभिन्न घटनाएं, प्रसंग आदि उसी केन्द्रीय विचार का अथवा विषय के समर्थनकारी हों। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि "आने वाली पीढ़ी पिछली पीढ़ी की ममता की पीड़ा नहीं समझ पाती और पिछली पीढ़ी अपनी संतान के संभावित संकट की कल्पना मात्र से उद्विग्न हो जाती है। मन में यह प्रतीति ही नहीं होती कि अब संतान समर्थ है, बड़े से बड़ा संकट झेल लेगी।" लेखक ने निबन्ध में आद्योपान्त इसी केन्द्रीय भाव या विचार का निर्वाह करके वैचारिक एकसूत्रता बनाए रखी है।

(ग) सजीवता : सजीवता का आशय यह है कि निबन्ध के शुष्क और नीरस से दीखने वाले विषय को भी सजीव बना दिया जाए अर्थात् उसे सजीव रूप में प्रस्तुत किया जाए। प्रस्तुत निबन्ध में लेखक ने राम के मुकुट भीगने की आशंका व्यक्त की है जिसके मूल में आने वाली पीढ़ी के संभावित संकट के प्रति पिछली पीढ़ी की सहज उद्विग्नता ही क्रियारत है। लेखक ने इस साधारण से विषय को लोक-जीवन का संस्पर्श देकर बहुत सजीव बना दिया है। प्रस्तुत निबन्ध को सजीव बनाने के लिए लेखक ने अपने चिरंजीव और बाहर से आई मेहमान लड़की के रात को संगीत कार्यक्रम में जाने और अप्रत्याशित रूप से देरी से लौटने के प्रसंग का भी वर्णन किया है। सच तो यह है कि लेखक ने निबन्ध का आरम्भ और समापन इसी प्रसंग के साथ किया है। परायी लड़की के बहुत देर तक न लौट सकने के कारण लेखक का मन अनेक प्रकार की दुश्चिन्ताओं से घिर जाता है जो कि स्वाभाविक भी है।

(घ) भावात्मकता : निबन्ध में भावात्मकता का आशय इस बात से है कि उसमें गूढ़ और गंभीर विचारों, सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति भी इस प्रकार हो कि पाठक को बोझिल न प्रतीत हो। दूसरे शब्दों में कहें तो निबन्ध का सृजन केवल बुद्धि के बल पर नहीं अपितु हृदय को साथ रखकर किया जाना चाहिए। निबन्ध पढ़कर पाठक को केवल यही नहीं आभास होना चाहिए कि उसकी बौद्धिक चेतना को यथोचित सामग्री मिल गई है बल्कि उसे ऐसा भी महसूस होना चाहिए कि निबन्ध उसके हृदय को छू गया है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का सम्बन्ध है, लेखक ने भावात्मकता का सम्यक् निर्वाह किया है। इस दृष्टि से प्रस्तुत निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"बचपन में दादी-नानी जांते पर यह गीत गातीं, मेरे घर से बाहर जाने पर विदेश में रहने पर वे यही गीत विह्वल होकर गातीं

और लौटने पर कहतीं "मेरे लाल को कैसा वनवास मिला था।" जब मुझे दादी-नानी की इस आकुलता पर हंसी आती पर गीत-स्वर बड़ा मीठा लगता। हां, तब उसका दर्द नहीं छूता।"

(ङ) **संगीतात्मकता :** संगीतात्मकता का आशय काव्यगुण-सम्पन्नता से है अर्थात् निबन्ध में भी काव्य का-सा आनन्द मिलना चाहिए। गद्य निश्चय ही काव्य जैसा सरल नहीं हो सकता फिर भी कोई-कोई निबन्धकार निबन्ध में भी काव्य की-सी रसमयता की सृष्टि करने में सफल हो जाता है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, अनेक स्थल ऐसे हैं जिनमें काव्य की-सी तरलता और माधुर्य के दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए निम्न पंक्तियां देखिए—"सोचते-सोचते लगा कि इस देश की ही नहीं, पूरे विश्व की एक कौशल्या है जो हर बारिश में बिसूर रही है" 'मोरे राम के भीजै मुकुटवा—मेरे राम का मुकुट भीग रहा होगा।' मेरी संतान, ऐश्वर्य की अधिकारिणी संतान वन में घूम रही है, उसका मुकुट, उसका ऐश्वर्य भीग रहा है, मेरे राम कब घर लौटेंगे। मेरे राम के सेवक का दुपट्टा भीग रहा है, पहरुए का कमरबंद भीग रहा है; उसका जागरण भीग रहा है। मेरे राम की सहचारिणी सीता का सिंदूर भीग रहा है, उसका अखण्ड सौभाग्य भीग रहा है, मैं कैसे धीरज धरूं?" इसी प्रकार लेखक ने निबन्ध में यहां तक लोकजीवन का संस्पर्श दे दिया है जिससे निबन्ध में संगीतात्मकता की सृष्टि हो जाती है। उदाहरण के लिए एक लोकगीत की निम्न पंक्तियां देखिए—

मोरे राम के भीजै मुकुटवा
लछिमन के पटुकवा
मोरी सीता के भीजै सेनुरवा
त राम घर लौटहिं।

(च) **वैयक्तिकता :** निबन्ध में वैयक्तिकता का तत्त्व बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। वैयक्तिकता का आशय इसी बात से है—निबन्ध पर उसके लेखक के व्यक्तित्व की सुस्पष्ट छाप होनी चाहिए। लेख का विषय कुछ भी हो सकता है किन्तु उसमें आत्मीयता के तत्त्व का निर्वाह अवश्य होना चाहिए। आत्मीयता का यह तत्त्व तभी आ सकता है जबकि लेखक निबन्ध के विषय को अपनी कल्पना के अनुसार चलाए। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, आत्मीयता के इस तत्त्व का निर्वाह आद्योपान्त हुआ है। निबन्ध का आरम्भ ही इस आत्मीयता के स्पर्श से हुआ

है। उदाहरण के लिए निम्न पंक्तियां देखिए—"महीनों से मन बेहद-बेहद उदास है। उदासी की कोई खास वजह नहीं, कुछ तबीयत ढीली, कुछ आसपास के तनाव और कुछ उनसे टूटने का डर, खुले आकाश के नीचे भी खुलकर सांस लेने की जगह की कमी, जिस काम में लगकर मुक्ति पाना चाहता हूं, उस काम में हजार बाधाएं, कुल ले-देकर उदासी के लिए इतनी बड़ी चीज नहीं बनती। इसलिए कभी-कभी तो बड़ी से बड़ी परेशान करने वाली बात हो जाती है। और कुछ भी परेशानी नहीं होती, उल्टे ऐसा लगता है, जो हुआ, एक सहज क्रम में हुआ, न होना ही कुछ अटपटा होता है और कभी-कभी बहुत मामूली-सी बात भी भयंकर चिंता का कारण बन जाती है।" प्रस्तुत निबन्ध की भाषा-शैली अर्थात् विषय का प्रस्तुतीकरण भी लेखक के व्यक्तित्व की सुस्पष्ट छाप लिये हुए है। इसी प्रकार प्रस्तुत निबन्ध की निम्न पंक्तियां भी देखिए जो कि लेखक के व्यक्तित्व की छाप लिये हुए है—बचपन में दादी-नानी जांते पर यही गीत गातीं, "मेरे घर से बाहर जाने पर विदेश में रहने पर वे यही गीत विह्वल होकर गातीं और लौटने पर कहतीं 'मेरे लाल को कैसा बनवास मिला था।' तब मुझे दादी-नानी की इस आकुलता पर हंसी आती, पर गीत का स्वर बड़ा मीठा लगता। हां, तब उसका दर्द नहीं छूता। पर इस प्रतीक्षा में एकाएक उसका दर्द उस ढलती रात में उभर आया और सोचने लगा, आने वाली पीढ़ी पिछली पीढ़ी की ममता की पीड़ा नहीं समझ पाती और पिछली पीढ़ी अपनी संतान के संभावित संकट की कल्पना मात्र से उद्विग्न हो जाती है। मन में यह प्रतीति ही नहीं होती कि अब संतान समर्थ है, बड़े से बड़ा संकट झेल लेगी।"

(छ) **हास्य तथा व्यंग्य का समावेश :** निबन्ध में विषय अथवा विचारों की अभिव्यक्ति को प्रभावी और सरस बनाने के लिए लेखक कभी-कभी हास्य एवं व्यंग्य का समावेश भी कर देता है। निबन्ध में हास्य-व्यंग्य के छुटपुट प्रसंगों से जहां एक ओर अभिव्यक्ति अधिक सार्थक और प्रभावी हो जाती है, वहां रोचकता का भी समावेश हो जाता है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, उसमें हास्य की तो नहीं, व्यंग्य की चुभन कहीं-कहीं देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत निबन्ध की निम्न पंक्तियां देखिए—"जिन लोगों के बीच रहता हूं, वे सभी मंगल नाना के नाती हैं, वे मुद-मंगल में ही रहना चाहते हैं, मेरे जैसे आदमी को वे निराशावादी समझकर बिरादरी से बाहर ही रखते हैं, डर लगा रहता है कि कहीं उड़कर उन्हें भी दुख न लग जाए, पर मैं अशेष मंगलाकांक्षाओं के पीछे से झांकती

हुई दुर्निवार शंकालु आंखों में झांकता हूं तो मंगल का सारा उत्साह फीका पड़ जाता है और वंदनवार न दिखकर बटोरी हुई रस्सी की शक्ल मे कुंडली मारे नागिन दिखती है, मंगलघट औंधाई हुई, अधफूटी गगरी दिखता है, उत्सव की रोशनी का तामझाम धुओं की गांठों का अंबार दिखता है और मंगल-वाद्य डेरा उखाड़ने वाले अंतिम कार-बरदार की उसांस में बजकर एक बारगी बंद हो जाता है।"

(ज) कलात्मकता : कलात्मकता का आशय निबन्ध के कलापक्ष से होता है जिसमें भाषा-शैली आदि पर विचार किया जाता है। निबन्ध के विषय का तो महत्त्व होता ही है, उसकी प्रस्तुति का भी समान महत्त्व होता है। जहां तक प्रस्तुत निबन्ध का प्रश्न है, लेखक की भाषा प्रायः बोलचाल की किन्तु प्रांजल भाषा का प्रयोग है। निबन्ध की भाषा में कहीं भी दुरूहता अथवा जटिलता के दर्शन नहीं होते। उदाहरण के लिए प्रस्तुत निबन्ध की भाषा की एक बानगी देखिए— "मनुष्य की इस सनातन नियति से एकदम आतंकित हो उठा, ऐश्वर्य और निर्वासन दोनों साथ-साथ चलते हैं। जिसे ऐश्वर्य सौंपा जाने को है, उसको निर्वासन पहले से बदा है।" प्रस्तुत निबन्ध की भाषा में लेखक ने जहां-तहां लोकगीतों के माध्यम से लोकभाषा का प्रयोग किया है। अभिव्यक्ति को अधिक प्रभावी और सजीव बनाने के उद्देश्य से लेखक ने उर्दू-फारसी भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है। इस दृष्टि से ये शब्द उल्लेख्य हैं—मंजिल, दरवाजा, दस्तक, उदासी, बेहद, तबीयत, वजह, हजार तथा चीज आदि। प्रस्तुत निबन्ध की शैली में प्रसाद गुण का सहज समावेश हो गया है जिसके कारण अर्थ-प्रतीति में तनिक भी द्विविधा या कठिनाई अनुभव नहीं होती। सच तो यह है कि हिन्दी में इस प्रकार के निबन्ध रचने वालों में श्री विद्यानिदास मिश्र विशिष्ट आदर के पात्र बन गए हैं।

महत्त्वपूर्ण अवतरणों की सप्रसंग व्याख्या

महीनों से मन बेहद-बेहद उदास है। उदासी की कोई खास वजह नहीं, कुछ तबीयत ढीली, कुछ आसपास के तनाव और कुछ उनके टूटने का डर, खुले आकाश के नीचे भी खुलकर सांस लेने की जगह की कमी, जिस काम में लगकर मुक्ति पाना चाहती हूं, उस काम में हजार बाधाएं, कुल ले-देकर उदासी के लिए इतनी बड़ी चीज नहीं बनती। फिर भी रात-रात नींद नहीं आती। दिन ऐसे बीतते हैं जैसे भूतों के सपनों की एक रील पर दूसरी रील चढ़ा दी गयी हो और भूतों की

आकृतियां और डरावनी हो गयी हों। इसलिए कभी-कभी तो बड़ी से बड़ी परे-शान करने वाली बात हो जाती है और कुछ भी परेशानी नहीं होती, उल्टे ऐसे लगता है, जो हुआ, एक सहज क्रम में हुआ, न होना ही कुछ अटपटा होता और कभी-कभी बहुत मामूली-सी बात भी भयंकर चिन्ता का कारण बन जाती है।"

(पृष्ठ १००)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने अपना विचित्र मनःस्थिति का वर्णन किया है। प्रस्तुत गद्यांश निबन्ध का आरंभिक गद्यांश है और इसे एक प्रकार से निबन्ध की भूमिका के रूप में समझा जा सकता है।

व्याख्या : अपनी विचित्र मनःस्थिति का वर्णन करते हुए लेखक कहता है कि "कई महीनों से मुझे उदासी का अनुभव हो रहा है। यद्यपि मेरी इस उदासीनता का कोई विशेष कारण नहीं दीखता फिर भी उदासी है कि बराबर बनी हुई है। फलतः मन भी कुछ बोझिल रहता है। प्रकटतः कोई अभाव भी नहीं दीखता। कई बार तो ऐसा लगता है कि मैं खुलकर सांस भी नहीं ले सकता। यदि किसी काम को करने का निश्चय करता हूं तो उसमें अनेक बाधाएं उपस्थित हो जाती हैं और सीधा-सरल-सा दीखने वाला काम भी पूरा नहीं हो पाता। इस प्रकार पूरी खोजबीन करने पर भी मुझे अपनी इस उदासी का कोई कारण ढूंढे नहीं मिलता। रात की नींद और दिन का चैन गायब-सा हो गया है। दिन में तरह-तरह की चिन्ताएं घेरे रहती हैं और यही नहीं, ये चिन्ताएं भी निरंतर भयावह होती जाती हैं। इस सबका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि कभी तो बहुत गंभीर बात भी सहज रूप में घट जाती है और कभी-कभी छोटी-सी, मामूली-सी दीखने वाली बात भयंकर रूप धारण कर लेती है। कभी तो गंभीर घटनाएं ऐसे सहज रूप में घट जाती हैं मानो कुछ भी विशेष न हुआ हो।

विशेष : १. प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने अपनी मनःस्थिति का सजीव चित्रण किया है।

२. निबन्ध की एक अन्यतम विशेषता यह होती है कि उस पर निबन्धकार के व्यक्तित्व की छाप होती है। उक्त पंक्तियां लेखक के व्यक्तित्व की छाप की ही परिचायक हैं।

"बचपन में दादी-नानी जाते पर यह गीत गाती थीं, मेरे घर से बाहर जाने पर विदेश में रहने पर वे यही विह्वल होकर गातीं और लौटने पर कहतीं "मेरे लाल को कैसा बनवास मिला था।" जब मुझे दादी-नानी की इस आकुलता पर हंसी आती है, पर गीत का स्वर बड़ा मीठा लगता। हां, तब उसका दर्द नहीं छूता पर इस प्रतीक्षा मे एकाएक उसका दर्द उस ढलती रात में उभर आया और सोचने लगा आने वाली पीढ़ी पिछली पीढ़ी की ममता की पीड़ा नहीं समझ पाती और पिछली पीढ़ी अपनी संतान के संभावित संकट की कल्पना मात्र से उद्विग्न हो जाती है। मन में यह प्रतीति ही नहीं होती कि अब संतान समर्थ है, बड़े से बड़ा संकट झेल लेगी। बार-बार मन को समझाने की कोशिश करता, लड़की दिल्ली विश्वविद्यालय के एक कॉलिज में पढ़ती है, लड़का संकट-बोध की कविता लिखता है, पर लड़की का ख्याल आते ही दुश्चिन्ता होती, गली में जाने कैसे तत्त्व रहते हैं। लौटते समय कहीं कुछ हो न गया हो और अपने भीतर अनायास अपराधी होने का भाव जाग जाता, मुझे रोकना चाहिए था या कोई व्यवस्था करनी चाहिए थी (और लड़की तो हर एक परायी होती है, धोबी की गुटरी की तरह बाहर खुले आकाश में कितने दिन फहराएगी, अंत में उसे गृहिणी बनते जाना ही है।) घर आयी, कहीं कुछ हो न जाये।"

(पृष्ठ १०१)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक अपने मन की इसी चिन्ता को व्यक्त कर रहा है कि संगीत के कार्यक्रम का आनन्द लेने के लिए गया हुआ उसका अपना पुत्र, बाहर से आई हुई एक परायी कन्या रात बहुत देर तक घर नहीं लौटी थी।

व्याख्या : अपने मन की चिन्ता को व्यक्त करते हुए लेखक कह रहा है कि मुझे याद है कि मेरे बचपन में जब कभी मैं बहुत दिनो के बाद विदेश से घर लौटता तो मेरी दादी-नानी भावविह्वल होकर गा उठती थी कि 'मेरे लाल को कैसा वनवास मिला।' निस्सन्देह उनकी इस गीत पंक्ति में उनके हृदय की आकुलता व्यक्त होती थी जिसे मैं बच्चा होने के कारण नहीं समझ पाता था। यह है कि तब मुझे अपनी दादी-नानी की इस आकुलता को जानकर हंसी आती थी। फिर भी गीत की यह पंक्ति बहुत मधुर लगती थी, हां, उस पंक्ति में छिपी हुई आकुलता, उद्विग्नता मेरी

समझ से बाहर थी। आज जबकि मैं संगीत कार्यक्रम सुनने के लिए कई घंटे पहले गए, अपने पुत्र, बाहर से आई एक कन्या की प्रतीक्षा कर रहा था, मुझे उसी दर्द, आकुलता और उद्विग्नता का भास हो गया। मुझे ऐसा लगा कि हमसे अगली पीढ़ी हमारी आकुलता को नहीं समझ पाती और इसके विपरीत एक हम हैं कि अपने बच्चों पर आने वाले संभावित संकटों की कल्पना मात्र से ही उद्विग्न हो उठते हैं। हम यह मान ही नहीं पाते कि हमारी संतान समर्थ है, आने वाली समस्याओं का प्रभावी ढंग से समाधान कर सकती है और कदाचित इसी कारण मैं भी उस रात बहुत उद्विग्न रहा क्योंकि मेरा पुत्र, और दिल्ली से आई हुई लड़की बहुत रात तक संगीत कार्यक्रम से नहीं लौटे थे। मैं अपने मन को बार-बार यह समझा रहा था कि लड़की दिल्ली विश्वविद्यालय के कॉलिज में पढ़ती है और इस कारण अनेक अप्रत्याशित घटनाओं का सामना करने में समर्थ होगी और इसी प्रकार मेरा पुत्र भी संकट-बोध की कविता करता है, स्वभावतः निडर होगा किन्तु फिर भी मन को चैन नहीं था। बराबर यही ख्याल आता था कि कहीं जवान लड़की के साथ रात में कुछ अप्रिय न घट गया हो और इसी के साथ मुझे लगता था जैसे कि मैंने उन्हें रात के समय घर से बाहर जाने की अनुमति देकर गलती की है; मैं ऐसे ही अपराधबोध से घिरा हुआ था। मुझे लगा कि मुझे लड़की को रात के समय नहीं जाने देना चाहिए था या उनकी सुरक्षित वापसी के लिए कुछ-न-कुछ व्यवस्था करनी चाहिए थी।

विशेष : (क) प्रस्तुत गद्यांश निबन्धकार के व्यक्तित्व की छाप का परिचायक है।

(ख) प्रस्तुत गद्यांश इस बात का भी परिचायक है कि लेखक को मनोविज्ञान की गहरी समझ है। अपनी संतान के प्रति संभावित संकट की कल्पना हमें कितना उद्विग्न कर देती है, यह सामान्य मनोविज्ञान का एक सुविदित सिद्धान्त है।

"सोचते-सोचते लगा कि इस देश की ही नहीं, पूरे विश्व की एक कौशल्या है, जो हर बारिश में बिसूर रही है—मोरे राम के भीजै मुकुटवा (मेरे राम का मुकुट भीग रहा होगा)। मेरी संतान ऐश्वर्य की अधिकारिणी संतान वन में घूम रही है, उसका मुकुट, उसका ऐश्वर्य भीग रहा है, मेरे राम कब घर लौटेंगे, मेरे राम के सेवक का दुपट्टा भीग रहा है, पहरुए का कमरबन्द भीग रहा है, उसका जागरण भीग रहा है, मेरे राम की सहचारिणी सीता का सिंदूर भीग रहा है, उसका अखंड

सौभाग्य भीग रहा है, मैं कैसे धीरज धरूं ? मनुष्य की इस सनातन नियति से एकदम आतंकित हो उठा, ऐश्वर्य और निर्वासन दोनों साथ-साथ चलते हैं। जिसे ऐश्वर्य सौंपा जाने को है, उसको निर्वासन पहले से बदा है। जिन लोगों के बीच रहता हूं, वे सभी मंगल नाना के नाती हैं, वे मुदमंगल में ही रहना चाहते हैं, मेरे जैसे आदमी को वे निराशावादी समझकर बिरादरी से बाहर ही रखते हैं, डर लगता रहता है कि कहीं उड़कर उन्हें भी दुःख न लग जाय, पर मैं अशेष मंगलाकांक्षाओं के पीछे से झांकती हुई दुर्निवार शंकाकुल आंखों में झांकता हूं, तो मंगल का सारा उत्साह फीका पड़ जाता है और बंदनवार न दिखकर बटोरी हुई रस्सी की शक्ल में कुंडली मारे नागिन दिखती है, मंगलघट औंधाई हुई, अधफूटी गगरी दिखती है, उत्सव की रोशनी का तामझाम धुओं की गाठों का अम्बार दिखता है और मंगलवाद्य डेरा उखाडने वाले अंतिम कार-बरदार की उसांस में बजकर एकबारगी बन्द हो जाता है।

(पृष्ठ १०२-१०३)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विचरित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने मनुष्य की उस सनातन नियति का वर्णन किया है जिसके अनुसार ऐश्वर्य प्रात करने वाले के भाग्य में ऐश्वर्य से पहले निर्वासन बदा होता है। कदाचित इसी कारण जीवन के प्रति लेखक की दृष्टि निराशावादी रही। प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने अपनी इसी निराशावादी दृष्टि का परिचय दिया है।

व्याख्या : लेखक को लगा कि केवल इस देश की ही नहीं सारे विश्व की कौशल्या है जो हर समय इसी चिन्ता में व्याप्त रहती है कि "मेरे राम का मुकुट भीग रहा होगा।" लेखक के अनुसार वह कौशल्या सोचती होगी कि 'मेरी संतान भी राम की भांति ऐश्वर्य की पात्र थी किन्तु उसे निर्वासन का दुख भोगना पड़ रहा है। उसका ऐश्वर्य उसे प्राप्त नहीं हो रहा है। इसी प्रकार मेरी सीता का सिंदूर भी भीग रहा है, राम के सेवक लक्ष्मण का दुपट्टा भीग रहा है। भाव यह है कि मेरे पुत्र, पुत्रियां, पुत्रवधू सभी को ऐश्वर्य और सुख प्राप्त होना था किन्तु सभी नाना प्रकार के कष्टों, दुःखों में उलझे हैं। मैं अपने मन को कैसे समझाऊं, मुझे कैसे सन्तोष प्राप्त हो। आने वाली पीढ़ी की चिन्ता मुझे बराबर साल रही है।" लेखक पुनः कह उठा कि "मुझे लगता है कि किसी युग में राम के साथ जो हुआ,

वह तो मनुष्य की स्थिति रही है और ऐसी नियति युग-युग से चली आ रही है। सदा-सदा से यही हो रहा है कि मनुष्य को सुख और दुःख को समान रूप से वहन करना होता है। जिस किसी को ऐश्वर्य और सुख प्राप्त होना होता है, उसे निर्वासन का दुःख पहले ही प्राप्त हो जाता है। मैंने जीवन के इस कटु सत्य को बहुत बारीकी से देखा और समझा है और इस कारण मेरी दृष्टि किंचित् निराशावादी बन गई है। मेरे आसपास के लोग सर्वत्र मंगल ही मंगल देखना चाहते हैं। वे लोग अमंगल की कल्पना ही नहीं कर पाते। स्वभावतः ऐसे लोग मुझे निराशावादी मान कर अपने से अलग मानते हैं। उनकी दृष्टि में मेरे सोचने-समझने का ढंग गलत है। उन्हें लगता है कि मेरे निकट रहने से मेरे दुःख उन्हें लग जाएंगे। जहां तक मेरा प्रश्न है, मेरी दृष्टि सदैव शंकालु रहती है। मुझे सदैव यह स्मरण रहता है कि मनुष्य की सनातन नियति यही है कि उसके जीवन में ऐश्वर्य और निर्वासन साथ-साथ चलते हैं। प्रयत्न करने पर भी मैं अपने आप को इस जीवन-दर्शन से ऊपर नहीं उठा पाता। स्वभावतः मेरी शंकाकुल दृष्टि के सामने मंगल का उल्लास ही नहीं रह पाता। मेरी यह शंकालु दृष्टि बंदनवार को देखकर उल्लसित होने की बजाय चिंतित हो उठती है क्योंकि मुझे बंदनवार में कुंडली मारे नागिन दिखाई देती है। मेरे समक्ष मंगलघट भी कोई उत्साह संचारित नहीं कर पाते। मुझे इन मंगलघटों में औंधी और फूटी हुई गगरी दिखाई देती है। इसी प्रकार उत्सवों की चमक-दमक भी मुझे किसी प्रकार का मंगल उत्साह नहीं दे पाती बल्कि उसके भीतर मुझे निराशापूर्ण धुएं दिखाई देते हैं। उत्सवों के समय बजने वाले मंगल-वाद्य भी मेरे लिए आकर्षण नहीं रखते।

विशेष : प्रस्तुत गद्यांश से लेखक की यथार्थ जीवन-दृष्टि का भरपूर परिचय मिलता है।

"कोई गीत नहीं गाता। सीता जंगल की सूखी लकड़ी बीनती है, जलाकर अंजोर करती है और जुड़वां बच्चों का मुंह निहारती है। दूध की तरह अपमान की ज्वाला में चित्त कूद पड़ने के लिए उफनता है और बच्चों की प्यारी और मासूम मूरत देखते ही उस पर पानी के छींटे पड़ जाते हैं, उफान दब जाता है। पर इस निर्वासन मे भी सीता का सौभाग्य अखण्डित है, वह राम के मुकुट को तब भी प्रमाणित करता है। मुकुटधारी राम को निर्वासन से भी बड़ी व्यथा देता है और एक बार और अयोध्या जंगल बन जाती है, स्नेह की रसधार वन जाती है, सब कुछ उलटपुलट जाता है, भवभूति के शब्दों में पहचान की बस एक निशानी

बच रहती है, दूर ऊंचे खड़े तटस्थ पहाड़, राजमुकुट में बड़े हीरों की चमक के सैकड़ों शिखर, एकदम कठोर, तीखे और निर्मम। (पृष्ठ १०४)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विचरित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने सीता के पुन: निर्वासन की पीड़ा का मर्मान्तक वर्णन किया है।

व्याख्या : सीता के दोबारा निर्वासन की पीड़ा का वर्णन करते हुए लेखक कह रहा है कि "जब सीता को पुन: निर्वासित किया गया तो राम तो अयोध्या में आ गए किन्तु सीता को पुन: वही जंगल, वही अनजान वातावरण मिल पाया था। वहीं उसने जुड़वां बच्चों को जन्म दिया किन्तु इस शुभ अवसर पर मंगलगीत गाने वाला कोई नही था। सीता जगल की सूखी लकड़ियों को आग जलाकर सेंकती और अपने दुर्भाग्य को कोसती। उसे आज इस बात का गहरा दुःख था कि उसके पति राम तो अयोध्या में वैभव विलास भोग रहे हैं जबकि वह पति के बिना रहने का अपमान सह रही है। उसे यह देखकर गहरा दुख हो रहा था, उसका मन दूध की तरह उफनता किन्तु अपने नवजात शिशुओं के भोले मुखमण्डल को देख वह पुन धैर्य बांध लेती थी। तथापि जंगल में रहते हुए भी अपने सौभाग्य पर गर्वित थी, उसे अब भी इस बात पर गर्व था कि वह राम की पत्नी है। राम के सम्मान में उसने लेशमात्र भी कमी नहीं आने दी। दूसरी ओर राम की स्थिति देखते ही बनती थी। अथाह वैभव और विलास में रहते हुए भी उन्हें सीता का अभाव कचोट रहा था। सीता की पीड़ा की कल्पना करके वे अपने भीतर-ही-भीतर घुले जा रहे थे। उनकी पीड़ा निर्वासन की पीड़ा से कहीं अधिक तीखी थी। उनका समूचा प्रेम सूखी रेत की तरह अर्थहीन हो गया था। सीता के वियोग में उनके लिए अयोध्या भी जंगल की तरह दुःखदायी बन गई थी। राम का तो संसार ही बदल गया था। अयोध्या को पहचानना कठिन हो गया था। अब तो उसे पहचानने की एक ही निशानी रह गई थी और वह थी वहां खड़े हुए ऊंचे-ऊंचे पहाड़ और पर्वतशिखर। ये सारे शिखर और ऊंचे-ऊंचे पहाड़ पूरी तरह निर्जीव, कठोर और निर्मम बन गए थे। भाव यह है कि अथाह राजसी वैभव की स्वामिनी होते हुए भी अयोध्या अब श्रीहीन लगती थी। सीता के अभाव में राम के लिए अयोध्या में कुछ भी न हीं रह गया था। ऐसी श्रीहीन अयोध्या का भवभूति ने बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है।

कृतंत्य

"राम का मुकुट इतना भारी हो उठता है कि राम उस बोझ से कराह उठते हैं और इस वेदना के चीत्कार में सीता के माथे का सिंदूर और दमक उठता है, सीता का वर्चस्व और प्रखर हो उठता है।"

(पृष्ठ १०४)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने सीता के दोहरे निर्वासन की पीड़ा का उल्लेख किया है। निर्वासन के बाद राम तो अयोध्या में लौट आये थे किन्तु सीता को तो पुनः निर्वासन की पीड़ा सहन करनी पड़ी थी।

व्याख्या : लेखक बता रहा है कि "निर्वासन की अवधि बीत जाने के बाद राम अयोध्या लौट आए किन्तु यहां भी उन्हें वांछित सुख ऐश्वर्य प्राप्त न हो सका क्योंकि सीता उनके साथ नहीं थीं। सीता को पुनः निर्वासन भोगना पड़ा था, जंगल में नितान्त बेसहारा रहकर जुड़वां बच्चों को जन्म देना पड़ा था। सीता की यह असह्य पीड़ा राम से छिपी नहीं थी और इस कारण उनका मुकुट भारी हो गया था अर्थात् उनका समूचा ऐश्वर्य फीका पड़ गया था, उनके जीवन का समूचा उत्साह कहीं गायब हो गया था। स्वभावतः राम का अन्तर्मन बुरी तरह कराह उठा था, उन्हें रह-रहकर सीता की असह्य पीड़ा का स्मरण आ रहा था। इसके विपरीत सीता की मांग का सिंदूर इस अग्नि-परीक्षा में और भी अधिक प्रखरता के साथ उभर रहा था। भाव यह है कि इस अग्निपरीक्षा में सीता की पवित्रता और अधिक प्रमाणित हो गई थी।

"जाने कब से मेरे राम भीग रहे हैं और बादल है कि मूसलाधार ढरकाये चले जा रहे हैं, इतने में मन में एक चोर धीरे से फुसफुसाता है, राम तुम्हारे कब से हुए। तुम, जिसकी बुनाहट पहचान में नहीं आती, जिसके व्यक्तित्व के ताने-बाने तार-तार होकर अलग हो गए हैं, तुम्हारे कहे जाने वाले कोई हो भी सकते हैं कि यह तुम कह रहे हो, मेरे राम। और चोर की बात सच लगती है, मन कितना बंटा हुआ है, मनचाही और अनचाही दोनों तरह की हजारों चीजों में। दूसरे कुछ पतियायें, पर अपने ही भीतर परतीति नहीं होती कि मैं किसी का हूं या कोई मेरा है? पर दूसरी ओर यह भी सोचता हूं कि क्या बार-बार विचित्र से अनमनेपन में अकारण चिन्ता किसके लिए होती है, वह चिन्ता क्या पराये के लिए होती है, यह

क्या कुछ भी अपना नहीं है ? फिर इस अनमनेपन में ही क्या राम अपनाने के लिए हाथ नहीं बढ़ाते आए हैं, क्या न कुछ होना और न कुछ बनाना ही अपनाने की उनकी बढ़ी हुई शर्त नहीं है ?"

(पृष्ठ १०४-१०५)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने मानव-मन की किंचित रहस्यमय गुत्थियां खोलने का प्रयास किया है।

व्याख्या : मानवमन की रहस्यमय गुत्थियां उद्घाटित करते हुए लेखक कह रहा है कि "मेरे राम पता नहीं कब से भीग रहे हैं और एक वर्षा है जो कि थमने का नाम ही नहीं लेती। तभी मेरे मन में एक प्रश्न-चिह्न उपस्थित हो जाता है कि जिस राम के भीगने की चिन्ता मुझे साल रही है, वे राम मेरे कैसे हैं ? भाव यह है कि कहीं राम के नाम पर मैं अपने ही बच्चों के कल्याण की चिन्ता में तो नहीं डूबा हुआ ! मेरा व्यक्तित्व बुरी तरह बिखरा हुआ है. उसमें राम के प्रति वांछित एकनिष्ठता और अनन्यता कहां है ! ऐसी स्थिति में किस विश्वास के साथ यह कह सकता हूं कि मैं 'अपने राम' के कल्याण के लिए चिन्तित हूं। ऐसा कह कर तो मैं स्वयं अपने आपको छल रहा हूं, धोखा दे रहा हूं। मुझे यह मानने में तनिक भी संकोच नहीं होता कि मेरा मन संसार की अनगिनत वस्तुओं के बीच बंटा हुआ है, उससे किसी भी राम के प्रति एकनिष्ठता नहीं है। मुझे लगता है कि जिन सम्बन्धों के सहारे मैं जी रहा हूं, वे भी कहीं बहुत कुछ खोखले से हैं। दूसरे कुछ भी कहें, स्वयं मुझे यह विश्वास नहीं आता कि मैं पूरी तरह से किसी का हूं अथवा कोई मेरा है। यह भी तो अपने आप में अधूरी बात है क्योंकि यदि मैं यह मान लूं कि मैं किसी का नहीं हूं और कोई मेरा नहीं है तो फिर मेरे मन में ये तरह-तरह की दुश्चिन्ताएं क्यों उठती हैं। जिन परिजनों के लिए तरह-तरह की दुश्चिन्ताएं मेरे मन में उठती हैं, क्या वे मेरे अपने नहीं हैं ? क्या मैं उनके प्रति अपनत्व का भाव नहीं रखता ? निश्चय ही उनके हित-अहित की मुझे सदैव चिंता रहती है। ऐसी चिन्ता किसी पराये व्यक्ति के लिए नहीं होती। फिर भी मेरे भीतर की यह उदासी, यह अनमनापन अपने आप में राम का ही स्मरण कराता है। मेरे पुत्र और बाहर से आई कन्या सुरक्षित लौट आये, उनके साथ कुछ भी अप्रिय नहीं घटा, क्या यह बात अपने आप में इस बात की परिचायक नहीं है कि

राम मुझे अपनाए हुए हैं, मुझ पर अपनी कृपा बनाए हुए हैं। सम्भवतः इसी प्रकार की दुश्चिन्ताओं में घिरे हुए मानव-मन को राम की प्रतीति होती है।

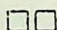
"तार टूट जाता है, मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, यह भीतर से कहां पाऊं? अपनी उदासी से ऐसे चिपलाव अपने संकेरे-से दर्द से ऐसा रिश्ता, राम को अपना कहने के लिए केवल उनके लिए भरा हुआ हृदय कहां पाऊं? मैं शब्दों के घने जंगल में हिरा गया हूं। जानता हूं इन्हीं जंगलों के आसपास किसी टेकड़ी पर राम की पर्णकुटी है, पर इन उलझाने वाले शब्दों के अलावा मेरे पास कोई राह नहीं। शायद सामने उपस्थित अपने ही मनोराज्य के युवराज, अपने बचे-खुचे स्नेह के पात्र, अपने भविष्यत् के संकट की चिन्ता में राम के निर्वासन का जो ध्यान आ जाता है, उनसे भी अधिक एक बिजली से जगमगाते शहर में एक पढ़ी-लिखी चंद दिनों की मेहमान लड़की के एक रात कुछ देर से लौटने पर अकारण चिन्ता हो जाती है। उसमें सीता का खयाल आ जाता है, वह राम के मुकुट या सीता के सिंदूर के भीगने की आशंका से जोड़ न जोड़ें, आज की दरिद्र अर्थहीन, उदासी को कुछ ऐसा अर्थ नहीं दे देता जिससे जिन्दगी ऊब से कुछ उबर सके।"

(पृष्ठ १०५)

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध से लिया गया है जिसमें लेखक पुनः अपनी मनः स्थिति का वर्णन कर रहा है।

व्याख्या : अपनी मनःस्थिति का वर्णन करते हुए लेखक कह रहा है कि 'राम के भीगने की चिन्ता का तार अचानक टूट जाता है। राम के प्रति वह अनन्यता और एकनिष्ठता मैं कहां से लाऊं जो कि अपने भीतर उनके भीगने की चिन्ता व्याप्त कर सकूं। भाव यह है कि मेरे पास वह मन नहीं है जो पूरी तरह श्रीराम के प्रति समर्पित हो, जिसमें श्रीराम के अतिरिक्त और कोई भी न हो। सच तो यह है कि मेरा मन अपने-परायों बंटा हुआ है, राम के प्रति एकनिष्ठता कहां है और इस कारण राम के भीगने की चिन्ता भी कहां हो सकती है। मेरे पास तो केवल शब्दों का उलझाव है, अपने-परायों के ऐसे बहुविध सम्बन्ध हैं जिनके भीतर मैं बुरी तरह बंधा हुआ हूं। मैं जानता हूं कि राम मुझसे बहुत दूर नहीं हैं किन्तु इन सम्बन्धों से मुक्ति मिले तो मुझे राम का स्मरण हो। आज बहुत रात तक मेरा पुत्र संगीत कार्यक्रम देखकर नहीं लौटा तो मुझे राम के भीगने का स्मरण हो आया।

इसका एक मात्र कारण यही है कि मेरा पुत्र मेरे हृदय का अंश है, मेरे समूचे स्नेह का हकदार है और कदाचित् इसीलिए उसके देर तक न लौट पाने की चिन्ता मुझे साल रही है। राम के निर्वासन की पीड़ा भी संभवतः इसीलिए घिर आई है। उससे भी अधिक चिन्ता इस बात की है कि बाहर से आई हुई परायी कन्या भी उसके साथ है और वह भी काफी रात गए तक घर नहीं लौटी है। यह परायी कन्या दिल्ली जैसे महानगर की है, अपने आप में काफी समर्थ और समझदार होनी चाहिए किन्तु उसके न लौट पाने के कारण मन और भी अधिक चिन्तित हो उठता है। जैसे ही मुझे उस परायी लड़की के समय से घर न लौट पाने की चिन्ता होती है, वैसे ही मुझे सीता का स्मरण हो आता है। मेरी यह चिन्ता भले ही राम के मुकुट अथवा सीता के सिंदूर के भीग जाने की चिन्त से न जुड़ी हो किन्तु इसका संबंध कहीं-न-कहीं मेरी इस अर्थहीन उदासी के साथ अवश्य है, अन्यथा मेरा जीवन भी इस अकारण ऊब से ऊपर उठ जाता।



प्रिय पाठक,

हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि आपको हमारी यह पुस्तक अवश्य ही रुचिकर और लाभदायक लगी होगी, क्योंकि हमारा उद्देश्य ही आपको कम से कम मूल्य पर अधिक से अधिक उपयोगी सामग्री प्रदान करना है। फिर भी यदि आपको इन पुस्तकों में कुछ त्रुटियां अथवा अभाव महसूस हुए हों तो हमें अपने सुझाव अवश्य ही भेजिए, जिससे हम उन त्रुटियों को आगामी संस्करण के अवसर पर सुधार सकें। छात्र वर्ग की अधिक से अधिक सेवा करना ही हमारा लक्ष्य है, जिसमें आपका सहयोग भी वांछनीय है। यदि आपको यह पुस्तक पसन्द है तो अपने साथियों को भी इसे खरीदने का परामर्श दीजिए।

हिन्दी व संस्कृत साहित्य से सम्बन्धित समस्त प्रकार की पाठ्य सहायक पुस्तकें हम अपने ग्राहकों को बाजार-मूल्य से रियायत पर देते है तथा पुस्तकें वी० पी० द्वारा भी भेजते हैं। हमारी इस योजना का लाभ अवश्य उठाइये।

सूचीपत्र 1986

प्राचीन काव्य (सटीक) **हमारे प्रमुख प्रकाशन**

1. पद्मावत—मूल, आलोचना एवं व्याख्या	—डॉ० माया अग्रवाल	35-00
2. विद्यापति की पदावली	" " "	15-00
3. भ्रमर गीत-सार (सूरदास)	" " "	30-00
4. कबीर-वाणी पीयूष	" " "	15-00
5. कबीर-वाणी सार	" " "	15-00
6. कबीर-साखी सार	" " "	15-00
7. कबीर-वाणी सुधा	" " "	15-00
8. मंझन कृत मधुमालती	" " "	15-00
9. बिहारी सतसई	" " "	20-00
10. बिहारी सार्धशती	" " "	15-00
11. भंवर गीत (नन्ददास)	" " "	10-00
12. ललित ललाम	" " "	15-00
13. उस्मान कृत चित्रावली	" " "	20-00
14. केशव काव्य-सुधा	" —डॉ० देशराजसिंह भाटी	15-00
15. मीराबाई की पदावली	" —डॉ० राज नागपाल	16-00
16. सूर सागर सार	" —डॉ० कृष्णदेव शर्मा	25-00
17. कवितावली (तुलसीदास)	" " "	25-00

18. रीति-काव्यसंग्रह-मूल आलोचना एवं व्याख्या—डॉ० माया अग्रवाल 30-00
19. कवित्त रत्नाकर " 15-00
20. गीतावली " 15-00
21. रामचरितमानस " 20-00
22. उद्धव-शतक " 20-00
23. सुन्दर बिलास " 20-00
24. गंग कवित्त " 20-00
25. घनानंद कवित्त " 15-00
26. मृगावती सटीक " 20-00

आधुनिक काव्य

1. सर्जना के क्षण : एक विवेचन-समीक्षा, व्याख्या-डॉ० माया अग्रवाल 10-00
2. साकेत : एक विवेचन " 7-50
3. प्रिय प्रवास : एक विवेचन " 20-00
4. उर्वशी : एक विवेचन " 15-00
5. उन्मुक्त : एक विवेचन " 15-00
6. [illegible]या सप्तक : एक विवेचन " 15-00
7. राग-विराग : एक विवेचन " 15-00
8. आज के लोकप्रिय कवि अज्ञेय : एक विवेचन " 7-50
9. लहर-मीमांसा " " 10-00
10. बुनी हुई रस्सी : एक विवेचन " " 10-00
11. छाया पथ : एक विवेचन " 15-00
12. आंसू : एक विवेचन " 15-00
13. चाँद का मुंह टेढ़ा है : एक विवेचन —डॉ० राजपाल शर्मा 15-00
14. कवितांतर : एक विवेचन " 15-00
15. कामायनी एक विवेचन —डॉ० कृष्ण देव शर्मा 20-00
16. परिक्र[illegible] एक विवेचन " 10-00
17. छायावादोत्तर काव्य : एक विवेचन " 15-00
18. कुरुक्षेत्र : एक विवेचन " 15-00
19. रश्मि बंध : एक विवेचन " 20-00
20. प्रवाद पर्व : " 15-00

नाटक

1. आधे अधूरे : एक विवेचन-आलोचना, व्याख्या-डॉ० कृष्णदेव शर्मा 15-00
2. आषाढ़ का एक दिन : एक विवेचन " 15-00
3. लहरों के राजहंस : एक विवेचन " 15-00
4. अंधायुग : एक विवेचन—आलोचना व्याख्या—डॉ० कृष्णदेव शर्मा 15.00

5. चन्दगुप्त : एक विवेचन " 15.00
6. स्कन्दगुप्त : एक विवेचन " " 15-00
7. प्रतिनिधि एकांकी : एक विवेचन " " -50
8. नील देवी (मूल सहित) " " 7-50
9. चन्द्रावली नाटिका " 10.00
10. अँधेर नगरी " 10.00
11. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (मूल सहित)--डॉ० सतीश भार्गव 7-50
12. भारत दुर्दशा " 10.00
13. एकांकी संकलन 8.00

काव्य शास्त्र

1. भारतीय काव्य शास्त्र —डॉ० रामचन्द्रवर्मा शास्त्री 30-00
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र (प्रश्नोत्तर) डॉ० माया अग्रवाल 20-0
3. भारतीय काव्य शास्त्र (प्रश्नोत्तर रूप में) " 15-00
4. पाश्चात्य काव्य शास्त्र (प्रश्नोत्तर रूप में) " 15-00
5. पाश्चात्य साहित्यालोचन —डॉ० कृष्णदेव शर्मा 10·00

इतिहास और भाषा विज्ञान

1. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ और विकास—सरल-सुबोध-समीक्षात्मक शैली में विभिन्न प्रवृत्तियों का अध्ययन —डॉ० रामचन्द्र वर्मा 25-00
2. भाषा विज्ञान---भाषा विज्ञान, हिन्दी-भाषा और देवनागरी लिपि का वास्तविक विवेचन —डॉ० रामचन्द्र वर्मा 15-00
3 हिन्दी साहित्य की पूर्वपीठिका ---डॉ० रामचन्द्र वर्मा 20-00

उपन्यास, कथा, निबन्ध एवं संस्मरण

1. यशपाल और उनकी दिव्या —डॉ० राजपाल शर्मा 15-00
2. स्मृति की रेखाएं : एक विवेचन —डॉ० कृष्ण देव शर्मा 15-00
3. तूफानों के बीच : एक विवेचन " 15-00
4. कलम का सिपाही : एक विवेचन " 15-00
5. मानस का हंस : एक विवेचन —डॉ० माया अग्रवाल 15-00
6. महादेवी वर्मा और पथ के साथी " 7-50
7. त्यागपत्र : एक विवेचन " 10-00
8. गोदान : एक विवेचन " 15-00
9. मैला आंचल : एक विवेचन " 20-00
10. श्रेष्ठ हिन्दी निबन्ध : एक विवेचन " 15-00
11. निबन्ध संग्रह " 15-00
12. रंगभूमि : एक विवेचन " 15-00
13 नव कथा संग्रह " 18.00
14. अतीत के चलचित्र " 15.00

वितरक



कला-मन्दिर

प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता

1687, नई सड़क, दिल्ली-110006

दूरभाष: 278828